'प्राथमिक शिक्षक' राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् की एक त्रैमासिक पत्रिका है। इस पत्रिका का मुख्य उद्देश्य है, शिक्षकों और संबद्ध प्रशासकों तक केंद्रीय सरकार की शिक्षा नीतियों से संबंधित जानकारियाँ पहुँचाना, उन्हें कक्षा में प्रयोग में लाई जा सकने वाली सार्थक और संबद्ध सामग्री प्रदान करना और देश भर के विभिन्न केंद्रों में चल रहे पाठ्यक्रमों और कार्यक्रमों आदि के बारे में समय पर अवगत कराते रहना। शिक्षा जगत् में होने वाली गतिविधियों पर विचारों के आदान-प्रदान के लिए भी यह पत्रिका एक मंच प्रदान करती है।

पत्रिका में प्रकाशित लेखों में व्यक्त किए गए विचार लेखकों के अपने होते हैं। अत: यह आवश्यक नहीं है कि प्रत्येक चिंतन में परिषद् की नीतियों को ही प्रस्तुत किया गया हो। इसलिए परिषद् का कोई उत्तरदायित्व नहीं है।

अकादमिक संपादक

लता पाण्डे

अकादमिक संपादकीय मंडल

इंदु कुमार

रमेश कुमार

नरेश यादव — *मुख्य संपादक (संविदा सेवा)*

रेखा अग्रवाल — *संपादक*

अब्दुल नईम — *सहायक उत्पादन अधिकारी*

आवरण चित्र

प्रियंका साहू, IV-ई

केंद्रीय विद्यालय, एन.सी.ई.आर.टी.

मूल्य एक प्रति ₹65.00 वार्षिक ₹ 260.00

कविता

शिक्षा का अधिकार अधिनियम

अनार सिंह*

शिक्षा का अधिकार अधिनियम, अच्छी तरह समझ लो,
शिक्षण कैसे करना है अब, अच्छी तरह समझ लो।

ढाई आख़र प्रेम के अब, सबको पढ़ने होंगे,
बिना दण्ड के ही सब बच्चे, बस में करने होंगे।

नहीं उठाएंगे अब डण्डा, अच्छी तरह समझ लो,
शिक्षण कैसे करना है अब, अच्छी तरह समझ लो।

सतत् औ' व्यापक मूल्यांकन, हर बच्चे का करना है,
किसी हाल में किसी बच्चे को, फेल नहीं करना है।

नहीं करना है भेदभाव, अच्छी तरह समझ लो,
शिक्षण कैसे करना है अब, अच्छी तरह समझ लो।

बच्चों के अधिकारों का, हनन नहीं करना है,
हर बच्चे को हर अधिकार, खुशी-खुशी देना है।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या भी, अच्छी तरह समझ लो,
शिक्षण कैसे करना है अब, अच्छी तरह समझ लो।

* *उच्च प्राथमिक शिक्षक*, मधुबन, लक्ष्मी टॉकीज़ गली, दीनदयाल कॉलोनी, कासगंज-207123, उत्तर प्रदेश

अध्यक्ष, प्रकाशन प्रभाग, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविन्द मार्ग, नयी दिल्ली 110 016 द्वारा प्रकाशित तथा एना प्रिन्टो ग्राफिक्स प्रा.लि., 347-के, उद्योग केन्द्र एक्स-II, ग्रेटर नोएडा-201306 द्वारा मुद्रित।

प्राथमिक शिक्षक

वर्ष : 36 अंक 4 अक्तूबर 2012

इस अंक में

संवाद 3

लेख

1. अभिनय के ज़रिए शिक्षा — अक्षय कुमार दीक्षित — 5
2. किताबें और बच्चे — सरन काला — 8
3. मरीज़ के साथ मिलकर उसे ठीक करने का जुनून — किरन देवेंद्र — 11
4. बच्चों के स्वाभाविक विकास में सहायक हैं खेल — रीतू चंद्रा — 16
5. झरना क्यों रोती है? — रेनु चौहान — 23
6. संवादों के दरकते सेतु — शारदा कुमारी — 28
7. पतंगोत्सव का आयोजन — कपिल गहलोत — 33
8. विद्यालयों में विशेष सप्ताह कैसे मनाएँ? — अपर्णा पाण्डेय — 35

अनुभव

9. आज जा रहा हूँ, कल न लौटने के लिए? — जीवन सिंह ठाकुर — 38
10. दीपू — बनवारी लाल शर्मा — 42
11. पढ़ाने के कुछ अनुभव — आशा अय्यर — 44

विद्यया ऽ मृतमश्नुते

एन सी ई आर टी NCERT

विद्या से अमरत्व प्राप्त होता है।

परस्पर आवेष्टित हंस राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् (एन.सी.ई.आर.टी.) के कार्य के तीनों पक्षों के एकीकरण के प्रतीक हैं– (i) अनुसंधान और विकास, (ii) प्रशिक्षण, तथा (iii) विस्तार। यह डिज़ाइन कर्नाटक राज्य के रायचूर ज़िले में मस्के के निकट हुई खुदाइयों से प्राप्त ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी के अशोकयुगीन भग्नावशेष के आधार पर बनाया गया है।

उपर्युक्त आदर्श वाक्य *ईशावास्य उपनिषद्* से लिया गया है जिसका अर्थ है– विद्या से अमरत्व प्राप्त होता है।

शोध

12. कक्षा आठ के विद्यार्थियों में संस्कृत भाषा प्रवीणता के विकास हेतु बहुमाध्यमीय अनुदेशन अभिक्रम की प्रभावकारिता का अध्ययन	रमेश कुमार	53

बालमन कुछ कहता है

13. मेरी स्कूल पिकनिक	करन भारद्वाज	62
14. मुझे दोस्त पसंद है	यश आर्य	63

कविता

शिक्षा का अधिकार अधिनियम	अनार सिंह

संवाद

पूरे देश में 2 अक्टूबर को गांधी जयंती मनाई गई। इस अवसर पर सभी स्कूलों में कई कार्यक्रम आयोजित किए गए। गांधी जी का जीवन हम सभी के लिए प्रेरणा का स्रोत है। लेकिन बहुत कम लोगों को मालूम है कि गांधी जी राजनीतिक और सामाजिक जीवन के अलावा और किस-किस तरह के काम किया करते थे।

एन.सी.ई.आर.टी. द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'बहुरूप गांधी' (लेखक-अनु बंद्योपाध्याय) में गांधी जी के जीवन के विभिन्न पहलुओं को 28 अध्यायों में बखूबी उजागर किया गया है। इसकी प्रस्तावना में पंडित जवाहर लाल नेहरू लिखते हैं- यह पुस्तक बच्चों के लिए है लेकिन मुझे यकीन है कि बड़े लोग भी इसे खुशी से पढ़ेंगे और लाभ उठाएँगे। इस पुस्तक में शिक्षक अध्याय के अंतर्गत गांधी जी के शिक्षक रूप की चर्चा है जिसमें गांधी जी के शिक्षा संबंधी प्रयासों के बारे में बताया गया है। गांधी जी किताबें रटवाने के बदले बच्चों के चाल-चलन और मन के विकास पर बहुत ध्यान देते थे। वह चाहते थे कि पढ़ाई बच्चों को बोझ न लगे बल्कि उन्हें आनंद दे। केवल पढ़ने-लिखने और हिसाब लगाना सीख जाने को वह शिक्षा नहीं मानते थे। वह कोशिश किया करते थे कि बच्चे सभी धर्मों का आदर करें। वह सह-शिक्षा के समर्थक थे। गांधी जी चाहते थे कि सभी बच्चों को मातृभाषा में शिक्षा मिले। गांधी जी बच्चों को किसी भी प्रकार का दंड देने के विरोधी थे। एक बार क्रोध में आकर वह एक बच्चे को मार बैठे जिसका उन्हें बाद में बहुत पछतावा हुआ। उस विद्यार्थी को भी मार से उतना दुख नहीं हुआ जितना इस बात से कि उसके कारण बापू को इतना दुख हुआ। उसने गांधी जी से माफी माँगी। दंड देने का गांधी जी के जीवन में यही पहला और अंतिम अवसर था। रस्किन, टॉलस्टॉय तथा रवींद्रनाथ टैगोर के शिक्षा संबंधी विचारों का गांधी जी पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा था।

हम सभी जो कि बच्चों की शिक्षा से सरोकार रखते हैं यदि गांधी जी के विचारों को अपनाएँ तो निश्चित रूप से शिक्षा बच्चों को आनंददायक लगेगी, बोझ नहीं और हर बच्चे का शिक्षा पाने का सपना साकार हो सकेगा।

अकादमिक संपादक

लेख

1

अभिनय के ज़रिए शिक्षा

अक्षय कुमार दीक्षित*

बच्चों को सिखाने के कई माध्यम हैं, जिनमें से एक माध्यम अभिनय/नाटक भी है। अभिनय द्वारा ऐसी कई महत्वपूर्ण सूचनाएँ बच्चों को दी जा सकती हैं जो शायद किताबों द्वारा बच्चों को उतनी आकर्षित न करें। शिक्षण के दौरान अभिनय कला का किस प्रकार उपयोग किया जा सकता है, यह जानने के लिए पढ़िए लेख-अभिनय के ज़रिए शिक्षा।

दृश्य-1

सविता जी कक्षा 5 की अध्यापिका हैं। उन्होंने निश्चय किया कि चुनाव, लोकतंत्र, संसद तथा वोट का महत्त्व जैसी ज़रूरी लोकतांत्रिक संकल्पनाओं को स्पष्ट करने के लिए आज एक गतिविधि का आयोजन करेंगी। उन्होंने कक्षा में घोषणा की-कि आज हम अपनी कक्षा का एक नेता चुनेंगे। चुने गए नेता की ज़िम्मेदारी होगी कि कक्षा में यदि किसी बच्चे को कोई परेशानी है तो वह उसकी सहायता करेगा। बताइए, कौन बच्चा नेता बनना चाहता है।

यह सुनकर बच्चे एक-दूसरे के चेहरे ताकने लगे। कुछ देर बाद तीन बच्चों ने खड़े होकर नेता बनने की इच्छा प्रकट की। सविता जी ने कहा, ''सुमन, अमित और सलमा आज नेता बनना चाहते हैं पर कक्षा का नेता तीनों में से एक ही होगा। तो बताइए, इन तीनों में से किसे नेता बनाया जाए।'' कक्षा के सभी बच्चे तीनों का नाम लेने लगे। कोलाहल-सा मच गया। सविता जी कुछ समय तक मुस्कुराती रहीं, फिर बच्चों को शांत करते हुए बोलीं, ''ऐसा करते हैं, हर बच्चे को एक पर्ची दे देते हैं। आप अपनी-अपनी पर्चियों पर उस बच्चे का नाम लिख देना, जिसे आप अपना नेता बनाना चाहते हैं। जिस बच्चे के नाम की सबसे ज़्यादा पर्चियाँ होंगी, उसे नेता बना दिया जाएगा।'' सब बच्चे खुश हो गए। सविता जी ने आगे कहा, ''पर्चियों पर नाम लिखने से पहले, हम अपने तीनों साथियों को बुलाते हैं ताकि वे हम सबको बता सकें कि हम उनका नाम अपनी पर्ची पर लिखकर उनको क्यों चुनें।''

* सी-633, जे.वी.टी. गार्डन, छतरपुर एक्सटेंशन, नयी दिल्ली-110074

तीनों 'उम्मीदवार' बच्चों ने कक्षा के सामने आकर बारी-बारी से बताया कि उन्हें क्यों चुना जाना चाहिए। यह भी बताया कि नेता बनने के बाद वे कक्षा के लिए क्या-क्या करेंगे। सभी बच्चों के चेहरे पर चमक और मुस्कान आ गई। इसके बाद एक डिब्बे में सभी बच्चों ने पर्चियाँ डालीं। एक बच्चे ने उनको गिनकर घोषित किया - हमारी कक्षा की नेता है सलमा। सलमा को 15 पर्चियाँ मिली हैं, अमित को दस और सुमन को नौ।

सब बच्चों ने ताली बजाकर नेता का स्वागत किया। इसके बाद सविता जी ने इस प्रक्रिया को चुनावी प्रक्रिया से जोड़ते हुए बच्चों को याद दिलाया कि उनके माता-पिता भी इसी तरह अपना नेता चुनते हैं। चुनावी शब्दावली जैसे वोट, उम्मीदवार, घोषणापत्र आदि का मतलब बच्चे समझ चुके थे। क्या आप इस उदाहरण में अभिनय तथा अभिनेताओं को पहचान सके? इस उदाहरण से स्पष्ट है कि कक्षा में अभिनय तथा नाटकीकरण द्वारा जटिल संकल्पनाएँ भी कितनी सरलता से समझी जा सकती हैं।

नाटक और अभिनय का शिक्षा से बहुत गहरा संबंध है। कक्षा में अभिनय का उपयोग शिक्षा के इतिहास जितना ही पुराना है। जब शिक्षक कुछ बातचीत करते हैं तो वह भी अभिनय का ही एक रूप है। यदि इसे शिक्षण से जोड़ दिया जाए, तो सीखने-सिखाने की प्रक्रिया को और अधिक रोचक व प्रभावी बनाया जा सकता है।

कक्षा या विद्यालय में औपचारिक और अनौपचारिक अभिनय के अनेक अवसर मौजूद होते हैं। उदाहरण के लिए, विशेष दिवसों के समारोह में, शिक्षक-अभिभावक संघ की सभा में, प्रार्थना सभा या बाल सभा में और कक्षा सभा में। अभिनय का प्रयोग केवल भाषा में ही नहीं, बल्कि सभी विषयों को अधिक सरल, रोचक तथा जीवन के निकट लाने के लिए किया जा सकता है।

दृश्य -2

रमेश जी कक्षा 3 को पर्यावरण अध्ययन पढ़ा रहे हैं। मक्खी-मच्छरों से पैदा होने वाली बीमारियों और उनकी रोकथाम के विषय को उन्होंने कक्षा में अभिनय के माध्यम से स्पष्ट करने की योजना बनाई।

एक बच्चा बन गया मच्छर, एक बीमार तथा एक मित्र।

मच्छर- (दर्शकों से) मैं हूँ मच्छर। मुझे खून चूसना अच्छा लगता है। मौका मिलते ही मैं खून चूसना शुरू कर देता हूँ। इंसानों को पता भी नहीं चलता और मैं खून पीकर उड़ जाता हूँ। पर मैं खून के बदले में एक उपहार देकर जाता हूँ। मैं बदले में मलेरिया दे देता हूँ। हा-हा-हा !

बीमार बच्चा- डॉक्टर ने कहा है कि मुझे मलेरिया है। उन्होंने यह भी बताया है कि मलेरिया किसी मच्छर के काटने से हुआ है।

दोस्त- मच्छर तो इतने छोटे हैं, हर तरफ हैं। उनसे छुटकारा कैसे पाएँ?

बीमार बच्चा- उनपर तो मच्छर भगाने वाली दवाओं का भी असर नहीं होता। पर कोई तो कमज़ोरी होती होगी मच्छरों की। आखिर आते कहाँ से हैं इतने मच्छर?

दोस्त- मैंने देखा है जहाँ पानी भरा पड़ा हो, वहाँ मच्छर ज़्यादा दिखते हैं। अगर इधर-उधर भरे पड़े पानी को हटा दें तो मच्छर भी हट जाएँगे।

मच्छर-(दर्शकों से) अरे हटेंगे ही नहीं, खत्म भी हो जाएँगे। पानी में ही तो हम पैदा होते हैं। हाय! अब क्या होगा!

सारे बच्चे पानी भरे डिब्बों को खाली करते हैं। मच्छर भाग जाता है।

उपर्युक्त उदाहरण द्वारा हम देख सकते हैं कि अभिनय द्वारा किसी विषय की सौ प्रतिशत सूचना या जानकारी दे देना अनिवार्य नहीं है।

अभिनय/नाटक द्वारा दर्शक किसी समस्या या परिस्थिति के बारे में सोचना प्रारंभ कर दें तो यह भी महत्वपूर्ण सफलता मानी जाएगी। इसी प्रकार, अभिनय के लिए संदर्भ तथा प्रसंग अधिक महत्वपूर्ण है न कि साज़ो-सामान या दूसरे ताम-झाम।

नि:संदेह वस्त्राभूषण, मुखौटों और वाद्ययंत्रों द्वारा नाटक में चार चाँद लग जाते हैं। इन्हें हम आस-पास के स्रोतों से बिना कोई अतिरिक्त पैसा खर्च किए जुटा सकते हैं या स्वयं भी बना सकते हैं। परंतु यदि किसी कारणवश यह संभव न हो तो इनके बिना भी काम चलाया जा सकता है। उदाहरण के लिए, गणित विषय में मुद्रा का प्रयोग और योग, घटाना आदि में कुशलता बढ़ाने के लिए बाज़ार में खरीदारी का अभिनय करवाया जा सकता है। जहाँ बच्चे क्रेता, विक्रेता बनेंगे तथा काल्पनिक वस्तुओं को खरीदेंगे और बेचेंगे।

अभिनय द्वारा केवल विषयों की जानकारी भर का आदान-प्रदान नहीं होता बल्कि अनेक ऐसे कौशलों तथा रुचियों का विकास होता है जो किसी अन्य तरीके से नहीं हो सकता। उदाहरण के लिए, साथियों के साथ सहयोग, अपनी बारी का इंतज़ार करना, दूसरों को सम्मानपूर्वक सुनना, कल्पना तथा तर्क द्वारा रचना, (संवाद अपने मन से बनाकर कहना) दर्शकों के सामने आत्मविश्वासपूर्वक प्रस्तुति, स्व-अनुशासन, चिंतन आदि कौशल।

अभिनय द्वारा शिक्षक और बच्चों के बीच की दूरियाँ पाटी जा सकती हैं तथा कक्षा में अपनेपन की भावना में वृद्धि होती है।

❑❑❑

2

किताबें और बच्चे

सरन काला*

किसी ने सच ही कहा है कि किताबें इंसान की सच्ची दोस्त होती हैं। किताबें केवल हमारा ज्ञान ही नहीं, बल्कि हमारी सोच का दायरा भी बढ़ाती हैं। इस लेख के ज़रिए किताबों के महत्त्व को दर्शाया गया है। बच्चों में किताबों को लेकर किस तरह दिलचस्पी जगाएँ, कैसे उन्हें किताबों के प्रति आकर्षित किया जाए, इस दिशा में यह लेख एक छोटी-सी पहल है।

कहानी सुनने का मुझे हमेशा से शौक रहा। ये आदत मेरी तब से बनी, जब मैं छोटी थी। मैं हिमालय के ऐसे इलाके में जन्मी जहाँ 3-4 महीने बर्फ गिरा करती थी। इसीलिए घर से बाहर जाने का कोई मतलब नहीं था। मैं संयुक्त परिवार में रहती थी। पड़ोसी भी दूर-दूर रहते थे। सर्दियों में सायं 4 बजे ही दरवाज़े बंद हो जाते थे। अब क्या करें, हम आग तापते हुए बुखारी के पास बैठते थे और दादी और बड़ी बहनों के साथ बस कहानियाँ सुना करते थे। कहानी सुनते-सुनते दादी का कहना था 'हूं-हूं' ज़रूर करना। मेरी दादी के पास ढेरों कहानियाँ थीं। उनमें महाभारत के किस्से आदि बच्चों को हमारे नज़दीक लाते हैं, उनकी कल्पनाशक्ति को विकसित करते हैं। उनमें आत्मविश्वास भरते हैं। कहानी हमें शिक्षक नहीं बच्चों का साथी बनाती है।

इसी अनुभव का लाभ उठाते हुए मैंने विद्या भवन जूनियर स्कूल में पुस्तकों एवं पुस्तकालय पर विशेष ध्यान दिया। जिसमें, तीन तरह से पुस्तकों के स्थान सुसज्जित किए गए। पुस्तकालय जो शाला में ऊपर अलमारियों में रहता था, उसको बच्चों के सामने लगाया। उसको मैं ''बेहतर शिक्षण सामग्री सुसज्जित कक्ष'' का दिन कहना पसंद करूँगी। इसके पीछे हमारा उद्देश्य था बच्चे केवल शिक्षक के द्वारा दिए गए ज्ञान पर ही निर्भर न रहें, बल्कि स्वयं सक्रिय रहते हुए सहजता से सोचने की ओर बढ़ें।

पुस्तकालय में तीन भाग बनाए गए। पहला भाग कक्षा पुस्तकालय था, जिसकी ज़िम्मेदारी बच्चों को दी गई। कक्षा में एक अलमारी या

* ऐश्वर्या बी.एस.सी. संस्थान, उदयपुर

रैक लगाकर उसे बच्चों का कॉर्नर बनाया गया। बच्चों को पूर्ण स्वतंत्रता दी गई कि वे पुस्तकालय प्रभारी से अपनी पसंद की पुस्तकें लेकर उनमें रखें। पुस्तकालय प्रभारी बच्चों में से चुनने को कहा गया। इस विषय पर अलग-अलग तरह के बड़े अच्छे सुझाव आए। जैसे-एक सप्ताह लड़कियों को सौंपा जाए, रजिस्टर के अनुसार आदि। अंत में निर्णय लिया गया कि कक्षा की प्रत्येक कतार में से 2-2 बच्चे लिए जाएँ।

काफी अच्छे परिणाम सामने आए। बच्चों ने अपने नियम बनाए जैसे-

- पुस्तकें पढ़कर उनकी जगह पर रखें।
- फट जाए तो चिपका देना।
- पूछकर घर ले जा सकते हैं।
- खाना खाकर पुस्तकें पढ़ सकते हैं।
- कल पुस्तकें बिखरी हुई थीं, कृपया आखिर में रखने वाला बच्चा पुस्तकें लगाकर जाए।

इन नियमों ने कक्षा व्यवस्था में सुंदर परिवर्तन किया। कई बार एक छोटी-सी स्लिप हमारे लिए भी कक्षा में पहुँचा दी जाती थी ''दो किताबें नहीं मिल रही हैं!'' या ''कुछ बच्चे रैक से किताबें लेकर अपने डेस्क में छुपा लेते हैं!'' कभी-कभी शिकायत भरे वाक्य भी लिखकर हमें बच्चे देने लगे। जैसे- पुस्तकों में से बच्चे चित्र फाड़ रहे हैं। बच्चे पुस्तकालय लीडर द्वारा लिखे नियम हमें बताने लगे। भाषा सीखने के लिए एक मार्ग नहीं अनेक मार्ग पूर्णता में सहायक हैं। इस प्रकार एक नये तरीके से भाषा कौशल का विभिन्न परिस्थितियों में विकास हो रहा था।

सभी शिक्षकों को अपनी कक्षा के छोटे से पुस्तकालय में सहयोग मिल रहा था। पंद्रह दिन बाद बच्चे इन पुस्तकों को सेंटर लाइब्रेरी से बदल कर लाते थे। जिस दिन नयी पुस्तकें आतीं बच्चों में बाँटने-छाँटने की होड़ लग जाती थी। इस हलचल में लगता पुस्तकें आलमारी से निकल नन्हे हाथों में आकर बहुत कुछ देना चाहती हैं।

लघु पुस्तकालय का एक भाग विषय कक्ष था। वहाँ प्रत्येक विषय जैसे, विज्ञान, गणित संबंधी पुस्तकें रखी गईं। जब भी पढ़ाया जाता, उनमें से चार्ट बनाने, सप्ताह की प्रोजेक्ट थीम पर लिखने-करने को शिक्षक उन्हें प्रेरित करते। बच्चे उन पुस्तकों को घर भी ले जाते। बच्चे जो भी उनमें से पढ़ते-ढूँढते-लिखते उसकी जानकारी वह अन्य बच्चों को भी देते। कई बार पाठ पढ़ते हुए कुछ बातें वे कक्षा में दोहराते, प्रश्न उठाते कि उस पुस्तक में कुछ और भी बताया है। इस विषय पुस्तकालय में बच्चों को ज्ञान बटोरने के लिए इधर-उधर दौड़ना नहीं पड़ता था। पुस्तकालय का तीसरा भाग- जूनियर स्कूल के मुख्य पुस्तकालय के बीच में बनाया गया। यह पुस्तकालय शिक्षकों, बच्चों, चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारियों एवं अभिभावकों को सदैव आकर्षित करता रहा। इसकी बैठक व्यवस्था नीचे दरी बिछाकर, चौकियाँ लगाकर की गई। इसमें बच्चे किसी भी कोने में या सेंटर में दीवार का सहारा लेकर पुस्तकें पढ़ सकते थे। ढेरों पुस्तकें प्रातः बच्चों के आने से पूर्व चौकियों पर रख दी जातीं। प्रत्येक विषय में एक लाइब्रेरी का कालांश भी जोड़ दिया गया। एक अलमारी में शिक्षकों के लिए पुस्तकें स्टाफ़ रूम में भी रख दी गईं, जिससे वहाँ भी पुस्तकों का लाभ लिया जा सके।

समय-समय पर पुस्तकालय प्रभारी द्वारा पुस्तक प्रदर्शनी, विद्या भवन शिक्षा केंद्र से ढेरों नयी पुस्तकें बच्चों को आकर्षित करती रहीं। पुस्तकालय का रूप बदल रहा था। जिसका परिणाम बच्चों में दिन-प्रतिदिन दिखाई दे रहा था। मैंने पूर्व में जो कहा उसे दोहराना चाहूँगी-''बच्चे पुस्तकें छुपा रहे थे'' हमने इसके पीछे का कारण जानने की कोशिश की। जिन बच्चों ने पुस्तकें छुपाईं थीं, उनका कहना था, ''हमारी कहानी अधूरी रह गई थी। फिर वो किताब इधर-उधर हो जाती है।'' हमारा अगला प्रश्न था कि कहाँ छुपाई? बच्चों ने बताया कि वे किताबें दरी के नीचे या फिर आलमारी के पीछे छुपाते हैं। पुस्तकालय के कारण इतनी सरलता से पढ़ने के कौशल में वृद्धि हो रही थी।

यह जानना भी ज़रूरी था कि क्या बच्चे वास्तव में किताबों में दिलचस्पी ले रहे हैं? यह पता लगाने के लिए मैंने प्रार्थना में गिनती की कि कितने बच्चे जल्दी स्कूल आते हैं। करीब 20-25 बच्चे खड़े हुए थे। जिनमें से 10 बच्चे सुखेर जीवन ज्योति के थे बाकी बच्चे आस-पास के। मैंने बच्चों से पूछा - यहाँ आकर क्या करते हो कोई शिक्षक तो होता नहीं है। उनका कहना था ''हमें अकेले में कहानी पढ़ने का अच्छा मौका मिलता है।'' बच्चों ने अपनी पसंद की पुस्तकों के नाम भी बताए। कुछ लड़कियों ने अपनी कहानियों के शीर्षक तक लिखे हुए थे। कुछ ने उनमें चित्र भी बना रखे थे।

बच्चों की पुस्तकों में रुचि लगातार बढ़ती जा रही थी। कई बार मैंने बच्चों के बीच बैठकर देखा कि तीसरी कक्षा के बच्चे छोटे-छोटे वाक्यों में लिखे चुटकुले,पहेलियाँ, एक-दूसरे को सुनाते हैं। चित्रों की कहानियाँ पढ़ते हैं। वहीं, पाँचवीं कक्षा के बच्चे मौन पठन करते हैं। लेकिन, मुझे आश्चर्य होता था कि जो बच्चे पाठ्यपुस्तक का पाठ पढ़ते हुए कई बार बीच में शब्द के लिए रुकते थे, अब आगे बढ़ते हुए बीच में कभी नहीं पूछते, बस पढ़ते रहते हैं।

बच्चे किताबों पर खूब चर्चा करते हैं, उदाहरण देते हैं, हँसते हैं, भावात्मकता ग्रहण करते हैं, समझना उन्हें आ जाता है। कई चुनौतियाँ वे कहानी में जान लेते हैं। इस प्रकार बच्चों की कल्पना और सोच विकसित करने तथा नवीनता पाने का पुस्तकालय और कहानियाँ अच्छा श्रेष्ठ साधन है।

❑❑❑

3

मरीज़ के साथ मिलकर उसे ठीक करने का जुनून

किरन देवेंद्र*

प्रत्येक बच्चे के लिए समय निकालना और उसके बारे में सोचना उसके संघर्ष में साथ देना, उसके सम्मान और भावनाओं की कद्र करना, हर जूझते हुए बच्चे के पास तुरंत पहुँचना, यह सब करना हर शिक्षक के लिए ज़रूरी है। यह सब हर शिक्षक कर भी सकता है! अगर उसके मन में भी अपने काम के लिए उसी तरह का जुनून हो जैसे कि हर मरीज़ के लिए डॉ. मुलर के मन में!

मुझे 12 वर्षों से रीढ़ की हड्डी की तकलीफ़ है। झुकना असंभव, अधिक समय तक बैठना व खड़े रहना बहुत मुश्किल, करवट लेने में कठिनाई व बेहद थकावट के साथ मैं कुछ सहायता लेते हुए अपना काम चला रही थी छः महीने तक। परंतु अब ऐसा नहीं है। बहुत-सी मुश्किलें आसान हो गईं, जब मेरी छोटी भाभी क्वीनी ने डॉ. गर्ड मुलर के बारे में बताया व मुझे वहाँ जाने की सलाह दी, मुझे यह सुनकर अच्छा नहीं लगा, क्योंकि मैं डॉ. मुलर के पास जाना ही नहीं चाहती थी। डॉ. तुली की मदद और लगातार व्यायाम करने की सलाह से मैंने अपने लिए एक तरीका अपना लिया था। छोटे-छोटे कार्य करने के लिए सहायता माँग लेना, लगातार सैर व व्यायाम करना, थकते ही (जहाँ भी कोई दुकान होती, ख़ासतौर पर किताबों की दुकान पर जहाँ मैं बहुत समय बिता लेती हूँ) बार-बार कुर्सी माँग लेने का संकोच मैंने कभी नहीं किया। बहुत अधिक दर्द बर्दाश्त कर पाना मेरी आदत हो गई थी। न चाहते हुए भी मैं डॉ. मुलर के पास गई। इसलिये नहीं कि जब क्वीनी अपनी रीढ़ की हड्डी की तकलीफ के लिए एक्टिवऑर्थो में गई, तो उसने मेरे इलाज के लिए भी पैसे जमा करवा दिए थे। मैं इसलिए

* *प्रोफ़ेसर और अध्यक्ष,* प्रारंभिक शिक्षा विभाग, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली-110016

गई क्योंकि मुझे महसूस हुआ कि क्वीनी चाहती थी कि मुझे दर्द व थकावट से राहत मिले।

डॉ. मुलर को मिलते ही लगा कि वे एक समझदार व अच्छे डॉक्टर हैं जिन्होंने जर्मनी में सालों तक हड्डियों की सर्जरी करने के बाद उसे छोड़ा। खेलों में लगने वाली चोटों का इलाज तथा व्यायाम, गर्म सिकाई व अन्य प्रकार के इलाज के तरीकों से हड्डियों व अन्य बीमारियों की रोक-थाम में महारत हासिल की। अपने अनुभवों से अपने प्रोग्रामों के ज़रिए एक ईमानदार सलाह देने में नहीं हिचकिचाए, उन मरीज़ों को जिनके लिए आपरेशन कराना ज़रूरी हो। आपरेशन के बाद भी एक्टिवऑर्थो के प्रोग्राम इन मरीजों को जल्दी ठीक होने में मदद करते हैं।

डॉ. मुलर जर्मनी के हैम्बर्ग के 1500 मरीज़ों वाले अस्पताल के डिप्टीचेयर रहे और यूरोपियन कमीशन फॉर बैक पेन के चेयर के रूप में कार्य किया। यह इसलिए संभव था क्योंकि डॉ. मुलर हड्डियों के विशेषज्ञ के रूप में अपना एक स्थान बना चुके थे तथा सभी को विश्वास था कि यह सभी डॉक्टरों को साथ लेकर सुलझी हुई सलाहें दे पाएँगे, जो रीढ़ की हड्डी व कमर से संबंधित समस्याओं के इलाज में मरीज़ों को मदद करेंगी व अन्य डॉक्टरों की समझ को और बेहतर बना पाएँगी।

एक महीने के अंदर ही मुझे डॉ. मुलर के इलाज से फर्क महसूस हुआ। मेरी थकावट में, चलने के तरीके में, कमर के सीधे होने में फर्क पड़ने लगा। मुझे अच्छा लगने लगा कि जिन क्रियाओं को मैं कर ही नहीं पाती थी, वे मैं धीरे-धीरे करने लगी। इसी बीच मेरा ब्लड प्रेशर बहुत ऊपर-नीचे जाने लगा जिससे दिल की धड़कन और घबराहट बहुत बढ़ जाती थी। एक्टिवऑर्थो में ऐसा चार बार हुआ। डॉ. मुलर और उनकी फिज़ियोथेरेपिस्ट क्रिस्टीना ने बहुत ही शांतिपूर्वक, बिना किसी हड़बड़ाहट के मुझे ठीक होने में मदद की। यह डॉ. मुलर की एक बहुत बड़ी हिम्मत और जोखिम लेने की शक्ति, अपने पर विश्वास व इंसानियत का बड़ा सबूत था। हमारे यहाँ का कोई भी डॉक्टर लगातार चार बार इतना जोखिम नहीं लेता। डॉ. मुलर ने पहली ही बार के बाद मुझसे कहा- 'मैं यहाँ नया हूँ और मुझे दिल व ब्लड प्रेशर के बारे में कम ज्ञान है फिर भी जब भी तुम्हें कष्ट हो, मेरे मोबाइल पर फोन करना, मैं अपने जानने वाले विशेषज्ञों से मिलकर तुम्हें कष्ट से बाहर लाने में पूरा प्रयास करूँगा।' डॉ. मुलर का यह विश्वास दिलाना मुझे कैसा लगा, इसे बयान करने के लिए शब्द ही नहीं हैं। मैं आभारी हूँ, उनकी इंसानियत व इच्छाशक्ति की। मैं अपने पति देवेंद्र को खो देने के बाद अपनी इच्छाशक्ति और विश्वास सब गवाँ चुकी थी। डॉ. मुलर व उनकी पत्नी ग्रैब्रियल ने मुझे हर कमज़ोर पल में प्यार व सम्मान दिया। मुझे विश्वास दिलाया कि जब मैं अपने को कष्ट में पाऊँ तो मैं उनसे बात कर सकती हूँ।

एक्टिवऑर्थो के प्रोग्राम ने गॉलब्लेडर के ऑपरेशन के बाद मेरी कभी न खत्म होने वाली थकावट से भी मुझे राहत दिलाई। जब तक मैं दर्द व थकावट से अधिक परेशान थी वे बार-बार समझाते रहे कि जिगर बहुत गहराई पर होता है जिससे बड़ी नली से गॉलब्लेडर को

अलग किया जाता है। इसे पूरी तरह ठीक होने में अधिक समय लगता है, इसलिए मुझे चिंता नहीं करनी चाहिए। डॉ. मुलर को अपने क्षेत्र के अलावा और भी क्षेत्रों की अच्छी जानकारी है। वे साहित्य, दर्शन तथा अन्य विषयों की पुस्तकें बहुत पढ़ते हैं। किताबें पढ़ने की आदत उन्हें विरासत में मिली है अपनी माँ गर्टरुड मुलर से, जिन्हें वे बहुत प्यार करते हैं। वे आज भी बहुत किताबें पढ़ती हैं। डॉ. मुलर में कड़ी मेहनत का गुण अपने पिता वुल्फगैंग मुलर से आया है, जो कि बहुत मेहनती थे। डॉ. मुलर अपने पिता का बहुत आदर करते हैं। डॉ. मुलर भी अपने बच्चों को किताबें पढ़कर सुनाते हैं। डॉ. मुलर ने मुझे राष्ट्रीय पाठ्यचर्चा-2005 की याद दिलाई कि शिक्षक को पुस्तकों के भी आगे जाना चाहिए।

जैसे यह मरीज़ों की गंभीर स्थिति देखते हुए अक्सर ज़रूरी बैठक या नये मरीज़ को देखते हुए गंभीर मरीज के पास भागते हैं, ऐसा शिक्षक भी कर सकते हैं जिससे हर उस बच्चे को यह विश्वास रहेगा कि उसका शिक्षक उसकी परवाह करता है। जैसे डॉ. मुलर हर मरीज़ के इलाज की योजना फिजियोथेरेपिस्ट के साथ मिलकर

मरीज़ की ज़रूरत के मुताबिक बनाते हैं। मरीज़ भी अपने इलाज में अपनी भागीदारी निभाता है। जैसा माहौल वे अपने मरीज़ों को देते हैं, शिक्षक भी अपनी कक्षाओं में बच्चों को दे सकते हैं।

इलाज की योजना बनाते समय वह सभी फिज़ियोथेरेपिस्ट की सलाह लेते हैं चाहे वह नया हो या अनुभवी। मरीज़ हर समय प्रश्न पूछने का अधिकार रखते हैं। यदि शिक्षक भी ऐसा कर लें तो हर बच्चे को यह अच्छा लगेगा कि शिक्षक उसे बोलने के और कक्षा में पूरी तरह भाग लेने के मौके दे रहे हैं। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा-2005 ने कक्षाओं में बच्चों की शिक्षा में भागीदारी पर ज़ोर दिया है, हर बच्चा अपनी गति, सीमा, रुचि व समझ से शिक्षक के सहयोग से शिक्षा पा सकेगा।

डॉ. मुलर, ग्रैब्रियल और उनके छः और चार साल के बच्चे चार्ली और आवा भारत की राजधानी दिल्ली में अपना घर व एक्टिवऑर्थो के साथ-साथ बच्चों के स्कूल के दाखिले, गर्मी व लू और फिर बरसात की बढ़ती हुई उमस, इन सबके बीच लगातार संघर्ष करते रहे लेकिन इन सबका असर मरीजों पर कभी नहीं पड़ा। हर मरीज़ बेहतर होता नज़र आ रहा था। मैं यहाँ दीपिका का ज़िक्र करना चाहूँगी जो लंदन से 34 वर्ष की आयु में सायटिका के इलाज के लिए आई थी। उसने और मैंने साथ ही आना शुरू किया। दीपिका दो महीने के अंदर ही अपने दर्द व दवाईयों से छुटकारा पा चुकी थी। उसकी सालों की थकावट गायब हो गई और उसने मुझे कहा-'अब मैं अपनी नौकरी व छोटे बच्चों का ख्याल अच्छी तरह रख पाऊँगी,

अपने पति के साथ अच्छा समय बिता पाऊँगी'। मैं दीपिका के लिये बहुत खुश हूँ।

श्री छाबड़ा बड़े सुलझे हुए हैं। लकवे के बाद उन्हें शारीरिक संतुलन बनाए रखने की समस्या हो गई थी। एक्टिवऑर्थो में आने के 3-4 महीनों में वे काफी ठीक हो रहे हैं। अधिकतर मरीज़ों को मुस्कुराते देखकर मुझे बहुत अच्छा लगता है। काफी मरीज़ एक-दूसरे के दोस्त बन गए हैं। हैल्थबार में मरीज़ों व उनके साथ आये व्यक्तियों के लिए चाय, कॉफी तथा जूस की व्यवस्था है। डॉ. मुलर हर मरीज़ को उसकी सुविधा अनुसार ही देखते हैं-किसी को हैल्थबार में मिल लेते हैं, तो किसी को 'एक्टिव' रूम में। जब भी किसी मरीज़ की परेशानी बढ़ जाती है तो ये वहीं भागते हुए देखे जाते हैं।

अक्सर मैं एक्टिवऑर्थो से वापस आती हुई उन बच्चों के बारे में सोचती हूँ जो पढ़ाई में अच्छे नहीं हैं या फिर किसी-न-किसी प्रकार की शारीरिक, मानसिक या भावनात्मक समस्याओं से जूझ रहे हैं। सालों के एन.सी.ई.आर.टी. के अनुभव जो मुझे मिल पाए, सभी राज्यों के स्कूलों में जाने के, मैं अक्सर उदास ही लौटी। अधिकतर शिक्षक पढ़ने में अच्छे विद्यार्थियों का ही हौसला बढ़ाते हैं। कोई नहीं रुकता स्कूलों में उन बच्चों के लिए, जो एक संघर्ष से गुज़र रहे होते हैं। इतने वर्षों में बहुत कम शिक्षक मिले जिन्होंने मेरे मस्तिष्क पर छाप छोड़ी है, जिनके पास शारीरिक व मानसिक समस्या से जूझते हुए बच्चों के प्रति संवेदना, सकारात्मक सोच तथा समय था। पटियाला की एक 25-26 वर्ष की शिक्षक मुझे याद है, जो आँखों से बेहद कम देखने वाले बच्चों के लिए हर प्रयास करती थीं जिससे कि वह बच्चे खुशी से पढ़ पाएँ। ऐसे ही शिक्षकों से मेरी पहचान हुई, जब कलकत्ता के 24 परगना के एक विद्यालय में एक ऐसी बच्ची से मिली जिसका पूरा स्कूल ध्यान रखता था। उस बच्ची की आँखें व हृदय बहुत कमज़ोर थे। विद्यालय के हर क्रियाकलाप में भाग लेने के लिए इस बच्ची को प्रोत्साहित किया जाता। शिक्षकों ने बच्चों को संवेदनशील बनाया जिससे इस बच्ची को कभी अकेलापन महसूस नहीं हुआ।

हाल ही में साऊथ अंडमान के दो स्कूलों में अच्छा अनुभव रहा। एक स्कूल में मुख्य अध्यापक और सारे अध्यापक हर उस बच्चे के लिए प्रयास कर रहे थे, जो संघर्ष कर रहे थे। यह सरकारी प्राथमिक विद्यालय, गारचरमा का था। दूसरे माध्यमिक एवं उच्च माध्यमिक विद्यालय कन्यापुरम, विमबरली गंज में नागराजन नामक शिक्षक में ऐसे सभी बच्चों के लिए कुछ करने की लगन थी। खासतौर पर सुधीर के लिए जो दिमागी एवं शारीरिक बीमारी से पीड़ित बच्चा है। इस शिक्षक को चिंता थी उसकी, क्योंकि बच्चा अपनी माँ की मौत के बाद से स्कूल नहीं आ सकता था। उसका कमज़ोर पिता मज़दूरी करता

है। उसे चिंता है कि सुधीर का क्या होगा, जब उसके पिता नहीं रहेंगे? सुधीर को स्कूल आना अच्छा लगता है। नागराजन ने उसकी कक्षा के सभी बच्चों को संवेदनशील बनाया है। कुछ बच्चे हर रोज़ ही सुधीर से मिलने जाते हैं। नागराजन एक परवाह न करने वाले मुख्य अध्यापक व अन्य अध्यापकों के बावजूद अपने जुनून को ज़िंदा रखते हैं, इन बच्चों का हाथ पकड़ने के लिए। डॉ. मुलर से हर शिक्षक सीख पायेगा हर बच्चे के लिए समय निकालना व उसके बारे में सोचना, उसके संघर्ष में उसका साथ देना तथा उसके सम्मान व भावनाओं की कद्र कर पाना, हर जूझते हुए बच्चे के पास भागकर पहुँचना।

तभी सभी बच्चों के छोटे-छोटे सपने साकार हो सकेंगे। उसकी छोटी-छोटी इच्छाएँ पूरी हो पाएंगी। यह करना शिक्षक के लिए आवश्यक है। हर बच्चा कुछ कर पायेगा। कठिन कुछ भी नहीं है। उसे अपनी मानसिकता बदलनी होगी और अपने को सही मायने में सक्षम बनाना होगा।

मेरा भी एक सपना है कि इन सभी बच्चों को एक डॉ. मुलर जैसा डॉक्टर व व्यक्ति मिले जो इनका हाथ थामकर इन्हें विश्वास व हिम्मत दे और इनके लिये समाधान ढूँढे ताकि ये बच्चे भी शिक्षा पाएँ और आत्मविश्वास के साथ जी पाएँ।

❑❑❑

4

बच्चों के स्वाभाविक विकास में सहायक हैं खेल

रीतू चंद्रा*

शिक्षा के सार्वजनीकरण की दृष्टि से पूर्व-प्राथमिक शिक्षा का अत्यंत महत्त्व है। पूर्व-प्राथमिक शिक्षा बच्चों को औपचारिक शिक्षा के लिए पूर्ण रूप से तैयार करती है, जिससे वे प्राथमिक शिक्षा केंद्रों में रुचिपूर्वक पढ़ते हैं और विद्यालय छोड़ने की प्रवृत्ति से बच जाते हैं। इसका उद्देश्य बच्चों में शिक्षा के प्रति रुचि जागृत करना और उनके सर्वांगीण विकास के लिए उनकी कल्पना शक्ति को उचित पोषण प्रदान करना है। परंतु, पूर्व-प्राथमिक शिक्षा के इस लक्ष्य की पूर्ति तभी संभव है जब शिक्षक पूर्व-प्राथमिक शिक्षा के अर्थ को सही मायने में समझें एवं शिक्षा को बाल केंद्रित, बंधनमुक्त, सुखद और आनंदप्रद बनाएँ, जो कि खेल आधारित गतिविधियों द्वारा ही संभव है। खेल आधारित गतिविधियों के महत्त्व को समझना और कार्यान्वित करना किसी चुनौती से कम नहीं। लेकिन, इस चुनौती का सामना कैसे करें? जानने के लिए पढ़िए यह लेख।

बच्चों के सर्वांगीण विकास हेतु 3 से 6 वर्ष तक की अवस्था में दी जाने वाली शिक्षा, पूर्व-प्राथमिक शिक्षा है। पूर्व-प्राथमिक शिक्षा बच्चों के लिए उपयुक्त वातावरण का निर्माण करने के साथ-साथ अपेक्षित सामग्री भी प्रदान करती है और बच्चों की नैसर्गिक क्षमताओं का उपयोग कर उनके स्वाभाविक एवं सर्वांगीण विकास (शारीरिक, बौद्धिक, सामाजिक, संवेगात्मक और भाषायी कौशल) की आधारशिला रखती है।

पिछले कुछ वर्षों में पूर्व-प्राथमिक शिक्षा की पद्धति एवं सिद्धांतों में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं। पहले जहाँ पूर्व प्राथमिक शिक्षा औपचारिक व शिक्षक आधारित थी, वहीं अब इसके अनौपचारिक रूप यानी की खेल विधि को स्वीकृति मिलने लगी है, जिसके केंद्र बिंदु केवल बच्चे हैं।

रूसो, डॉ0 मारिया मॉन्टेसरी, जॉन डुई, फ्रेडरिक विलियम फ्रॉबेल, अरविंद, रवींद्रनाथ टैगोर एवं गांधी जी जैसे विदेशी एवं भारतीय

* *असिस्टेंट प्रोफ़ेसर*, प्रारंभिक शिक्षा विभाग, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविंद मार्ग, नयी दिल्ली- 110016

शिक्षाविदों, दार्शनिकों और मनोवैज्ञानिकों के अतुल्य योगदान के फलस्वरूप ही ये सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक परिवर्तन आए हैं। इन सभी ने बाल केंद्रित शिक्षा के महत्त्व को स्वीकारते हुए, बच्चों को शिक्षा का केंद्र बिंदु माना है। इनके अनुसार बच्चे अपने तरीके से बोलते, सोचते-समझते और अनुभव करते हैं, उनमें सीखने और ज्ञान अर्जित करने की पूरी क्षमता होती है। अतः उन्हें उन्हीं के तरीकों से सीखने के लिए प्रेरित करना उचित है। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा-2005 में भी बाल केंद्रित शिक्षा के अर्थ को समझाते हुए कहा गया है कि बाल केंद्रित शिक्षा का अर्थ है बच्चों के अनुभवों, उनके स्वरों और उनकी सक्रिय सहभागिता को प्राथमिकता देना। इसी के साथ शिक्षाविदों ने इस बात पर भी विशेष बल दिया है कि पूर्व-प्राथमिक शिक्षा का उद्देश्य बच्चों के मस्तिष्क, हृदय और हस्त कौशल का स्वाभाविक विकास हो। बच्चों के संतुलित विकास के लिए आवश्यक है कि उनके हाथ एवं मस्तिष्क की गतिविधियों में सामंजस्य हो, जिससे उनका बौद्धिक और शारीरिक विकास ठीक प्रकार से हो सके।

इन उद्देश्यों की पूर्ति का तरीका है खेल। खेल बच्चों की स्वाभाविक प्रवृत्ति है और यही उनके विकास का आधार है। हर बच्चा खेलना चाहता है। इससे बच्चों को आनंद की अनुभूति होती है जो उनके स्वास्थ्य के लिए अत्यंत लाभकारी है। शोध से पता चला है कि खेल बच्चों के मस्तिष्क की संरचना के निर्माण में अहम भूमिका निभाते हैं, साथ ही स्मरण शक्ति को भी बढ़ाते हैं। इस प्रकार, खेल केवल शारीरिक विकास का ही नहीं, बच्चों के सर्वांगीण विकास अर्थात् शारीरिक, बौद्धिक, सामाजिक, संवेगात्मक और भाषायी कौशल के विकास का भी एक सशक्त माध्यम है। खेल-खेल में ही बच्चे अपने पर्यावरण के संबंध में विविध जानकारियाँ प्राप्त करते हैं और अपने आस-पास की दुनिया को बड़ी आसानी से समझ लेते हैं। खेलों के माध्यम से बच्चे अपने विचारों और भावनाओं को व्यक्त कर सकते हैं। खेलों की सहायता से प्रत्येक बच्चे की प्रगति का अंदाज़ा लगाया जा सकता है और बच्चे की प्रगति के अनुसार खेल की गतिविधियाँ बदली भी जा सकती हैं। अतः खेल के महत्त्व को किसी भी अर्थ में नकारा नहीं जा सकता। खेल विधि के प्रयोग से बच्चों में निम्न विकास होते हैं:

- शारीरिक व भाषायी कौशलों का विकास जैसे- शारीरिक संतुलन बनाना, आँखों व हाथों के बीच समन्वय स्थापित करना, शब्दावली का विकास और बातचीत कर पाना आदि।
- स्वास्थ्य व सक्रियता का विकास
- सामाजिक व संवेगात्मक गुणों व क्षमताओं का विकास जैसे:
  - दूसरों की बातों को ध्यानपूर्वक सुनना और समझना
  - निर्देशों के अनुसार काम करना
  - बातचीत का तरीका आना
  - सहानुभूति का विकास
  - नेतृत्व करने की क्षमता

- संगठनात्मक कौशल का विकास
- आपसी मतभेदों को सुलझाना
- समस्याओं के विकल्प ढूँढ़ना
- मजबूत व विश्वस्त रिश्ते कायम करना
- विभिन्न कार्यों में सहयोग देना
- अपनी बारी का इंतज़ार करना
- अपनी भावनाओं को व्यक्त करना और आवश्यकतानुसार नियंत्रण रखना
- सही और गलत की समझ
- नैतिकता का विकास

❖ व्यक्तित्व का विकास जैसे- स्व-अनुशासन, आत्मनिर्भरता, आत्मविश्वास, आत्मनियंत्रण और सकारात्मक रवैया आदि।

❖ खेलों द्वारा बच्चों में संज्ञानात्मक विकास जैसे जिज्ञासा, एकाग्रता, आशावाद, खुलापन, लचीलापन, कल्पनाशीलता, रचनात्मकता और तर्क शक्ति का भी विकास होता है।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा-2005 में भी खेल के महत्त्व को स्वीकारते हुए कहा गया है कि ''सभी बच्चों की स्वतंत्र खेलों, अनौपचारिक व औपचारिक खेलों और योग की गतिविधियों में सहभागिता उनके शारीरिक व मनो-सामाजिक विकास के लिए आवश्यक है। खेलकूद और योग से अर्जित योग्यताएँ शारीरिक बल, स्थूल गत्यात्मक कौशल नियंत्रण, आत्म-चेतना तथा समन्वयन की क्षमताओं में सुधार लाती हैं। अतः बच्चों को शिक्षा खेल के द्वारा ही दी जानी चाहिए। केंद्रों के दैनिक कार्यक्रमों में कुछ समय स्वतंत्र खेलों के तथा शेष समय निर्देशित खेलों के लिए निर्धारित होने ही चाहिए।

एक पूर्व-प्राथमिक शिक्षिका को खेल गतिविधियों के सफलतापूर्वक नियोजन एवं आयोजन के लिए निम्न बातों पर ध्यान देना आवश्यक है:

❖ **गतिविधियों के लिए सही वातावरण का निर्माण:**

खेल गतिविधियों के लिए वातावरण का निर्माण बच्चों को पर्याप्त अनुभव देने और उनकी सीखने की क्षमता को बढ़ाने की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है। वातावरण ऐसा होना चाहिए जो बच्चों को यह एहसास दिलाए कि यह स्थान और खिलौने उनके अपने हैं और वे यहाँ कुछ भी करने को स्वतंत्र हैं। उचित वातावरण बच्चों को खोज करने, सृजन करने, प्रयोग करने, अवलोकन करने और पूर्ण रूप से व लगातार संलग्न रहने के अवसर देता है। गतिविधियों के लिए वातावरण का निर्माण करने से पूर्व विषय का ध्यान रखना अत्यंत आवश्यक है, ताकि कक्षा की सजावट उसी के अनुरूप की जा सके। कक्षा की सजावट, बुलेटिन बोर्ड, कोनों की सजावट, दीवार चित्र, दीवार लटकन व मॉडल आदि की सहायता से की जा सकती है।

विकास की दृष्टि से शिक्षिका चार प्रकार के वातावरण का निर्माण कर सकती है:

- भौतिक वातावरण: जैसे स्थान, फर्नीचर और संसाधन जुटाना और गतिविधियों का आयोजन इस प्रकार करना जिससे बच्चों में खोज, जिज्ञासा

एवं जाँच-परखकर समझने की क्षमता विकसित हो सके।

- सामाजिक व संवेगात्मक वातावरण: बच्चों के लिए सुरक्षित, ऊर्जावान् और विश्वसनीय वातावरण का निर्माण, जिसमें वे स्वतंत्र रूप से गतिविधियाँ कर सकें व साथियों के साथ विश्वसनीय संबंध स्थापित कर सकें।
- बौद्धिक वातावरण: इसका अर्थ है बच्चों को गतिविधियाँ करने के लिए स्वतंत्र छोड़ना, साथ ही बीच-बीच में जानबूझकर उनसे बातें करना और गतिविधियों सें संबंधित प्रश्न करते रहना, जिससे उनके सीखने के स्तर का ज्ञान हो सके।
- अस्थायी वातावरण: इस प्रकार के वातावरण का निर्माण समय की उपलब्धता और उपलब्ध समय के उचित उपयोग से संबंधित है।

❖ **गतिविधियों के लिए सही स्थान का चुनाव:**

- **पर्याप्त स्थान:** गतिविधियों के लिए स्थान का चुनाव करते समय ध्यान रखें कि स्थान पर्याप्त हो। पर्याप्त स्थान के अभाव में शिक्षिका अपनी सूझ-बूझ से कम स्थान में भी गतिविधियों का आयोजन भली प्रकार से कर सकती है। जैसे- बच्चों को समूहों में बाँटकर गतिविधियाँ करवाना व गोले में करवायी जाने वाली गतिविधियाँ बच्चों की छोटी-छोटी पंक्तियाँ बनवाकर करवाना आदि। कभी-कभी खेल गतिविधियों में भी कुछ परिवर्तन करने पड़ सकते हैं।
- **सुरक्षित स्थान:** ध्यान रहे कि स्थान बच्चों की सुरक्षा की दृष्टि से भी उपयुक्त हो। कक्षा के बाहर खेले जाने वाले खेलों के लिए ऊबड़-खाबड़ और काँटेदार स्थान, जलाशय जैसे गढ्ढे, तालाब, नदी, झरने, कुएँ नाले अथवा जानवरों को बाँधने के स्थान के पास नहीं चुनना चाहिए। कक्षा के अंदर भी गतिविधियों का आयोजन करने से पहले सुनिश्चित कर लें कि बच्चों को नुकसान व चोट पहुँचाने वाली नुकीली अथवा धारदार वस्तुएँ आदि इधर-उधर न पड़ी हों।

❖ **गतिविधियों का चुनाव करने में ध्यान देने योग्य बातें:**

- खेल गतिविधियाँ बच्चों की आयु, शारीरिक और मानसिक स्तर की दृष्टि से उपयुक्त हों।
- वे उनकी वैयक्तिक भिन्नता, रुचि और आवश्यकताओं की दृष्टि से भी उपयुक्त हों।
- बच्चों को आत्मनिर्भर एवं कुशल बनाने हेतु प्राथमिक शिक्षक/अक्टूबर 2012 संबंधी गतिविधियाँ अधिक से अधिक हों।
- अधिकांश गतिविधियाँ एक ही आयु-वर्ग के बच्चों के लिए हों,

जैसे 3 से 4 वर्ष व 4 से 5 वर्ष। क्योंकि एक आयु-वर्ग के बच्चों की शारीरिक व मानसिक क्षमताएँ लगभग समान होती हैं।

- खेल गतिविधियाँ बच्चों की संख्या के अनुरूप हों।
- कमजोर, अस्वस्थ तथा विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के लिए उनकी क्षमता के अनुसार गतिविधियों का चुनाव करें।
- विषय आधारित कार्यक्रम में यह ध्यान रखें कि खेल गतिविधियाँ विषय के अनुरूप हों जिससे उस विषय में निहित कांसेप्ट्स का सबलीकरण हो सके।
- गतिविधियों का चुनाव करते समय व्यक्तिगत एवं सामूहिक, आंतरिक एवं बाहरी, स्वतंत्र एवं निर्देशित, सक्रिय एवं शांत तथा सहज एवं सृजनात्मक गतिविधियों के संतुलन का ध्यान रखें।
- खेल गतिविधियों की योजना बनाते समय ध्यान रखें कि गतिविधियाँ सरल से कठिन की ओर, परिचित से अपरिचित की ओर तथा मूर्त से अमूर्त को समझने का अवसर देती हों।
- गतिविधियों का चुनाव करते समय मौसम का भी ध्यान रखें। जैसे- बरसात व गर्मी के मौसम में आंतरिक और सर्दी के मौसम में बाहरी खेल गतिविधियाँ करवाना सुविधाजनक होता है।
- गतिविधियों का चुनाव करते समय उपलब्ध समय का ध्यान रखें और उसी के अनुसार प्रत्येक गतिविधि के लिए समय का निर्धारण करें।
- खेल गतिविधियाँ और उनके संबंध में दिए जाने वाले निर्देश सरल हों, जो आसानी से बच्चों की समझ में आ जाएँ।

❖ **खेल-खेल में की जाने वाली कुछ गतिविधियाँ:**

स्वतंत्र खेल, वार्तालाप, अभिनय, नाच, बालगीत, संगीत एवं लयात्मक गतिविधियाँ, मोतियाँ पिरोना, पहेलियाँ, कठपुतली का खेल, कागज के खेल, चित्र बनाना, कोलॉज कार्य, ब्लॉक्स से खेलना, तुकांत शब्द बनाना (जैसे- आना-जाना-खाना), पानी, रेत/ बालू/ मिट्टी के खेल, भ्रमण तथा कहानी सुनना, सुनाना और बनाना आदि।

❖ **गतिविधियाँ कराते समय ध्यान देने योग्य बातें:**

- गतिविधियाँ करवाने से पहले आवश्यक सहायक सामग्री एकत्रित कर लें।
- गतिविधि करवाने से पहले बच्चों को उस गतिविधि के नाम से अवगत कराएँ। यह भी बताएँ कि इसे कैसे खेला जाता है, पहले मौखिक रूप से फिर सहायिका की सहायता से वास्तविक रूप से समझाएँ।

- गतिविधि से संबंधित नियम भी स्पष्ट रूप से बताएँ साथ ही गतिविधि के दौरान नियमों के पालन की मॉनीटरिंग भी करें।
- कमजोर तथा अस्वस्थ बच्चों से सरल व शांत गतिविधियाँ करवाएँ और यदि आवश्यकता हो तो उन्हें विश्राम करने और खेल गतिविधियों को देखने के अवसर दें।
- विशेष आवश्यकता वाले बच्चों को उनकी क्षमताओं को ध्यान में रखते हुए उन्हें खेल गतिविधियों में भाग लेने के लिए प्रेरित करें।
- एकाकी खेल व छोटे और बड़े समूह में खेले जाने वाली खेल गतिविधियों का समावेश करें।
- कुछ खेल गतिविधियाँ करवाने के लिए विशेष उपकरणों और संसाधनों की आवश्यकता पड़ती है जिनके अभाव में वैकल्पिक उपकरणों और संसाधनों का उपयोग करें अन्यथा वैकल्पिक गतिविधियों का चुनाव करें।
- एक संबोध के विकास के लिए कई खेल गतिविधियों का आयोजन करवाएँ।
- बच्चों को छोटी-बड़ी माँसपेशियों के प्रयोग के अधिकाधिक अवसर प्रदान करें।
- बच्चों की सृजन करने की क्षमता के लिए विभिन्न प्रकार के गतिविधियों के पर्याप्त अवसर प्रदान करना, जिनमें सब कुछ वह स्वयं करें।
- बच्चों को प्रेरक वातावरण प्रदान करें, जिससे वे विभिन्न प्रकार के अनुभवों, साधनों, वस्तुओं तथा स्थानों से परिचित हो सकें और उनका उपयोग कर सकें।
- बच्चों को प्रत्यक्ष अनुभवों के लिए अवलोकन करने, गतिविधियाँ करने, वस्तुओं के वर्गीकरण करने के अधि काधिक अवसर प्रदान करें।
- बच्चों को आपस में एवं अन्य लोगों के साथ गतिविधियाँ करने के अवसर प्रदान करें।
- बच्चों को जो प्रिय हो, जिसमें उन्हें आनंद आए उन्हीं तरीकों को अपनाएँ व वैसा ही व्यवहार करें।
- गतिविधियों के दौरान बच्चों को माता-पिता जैसा प्यार दें व स्नेह भरी सजग देखभाल करें।
- बच्चों की प्रशंसा एवं प्रोत्साहन करना न भूलें और यथावश्यक मार्गदर्शन भी प्रदान करें।
- बच्चों को आत्माभिव्यक्ति के अधिकतम अवसर प्रदान करें।
- बच्चों को परस्पर सहयोग करने के अवसर दें।

खेल गतिविधियों का चुनाव करते समय उपरोक्त बातों का ध्यान रखा जाना चाहिए, लेकिन फिर भी कुछ ऐसी समस्याएँ सामने आ सकती हैं जहाँ शिक्षिका को अपनी सूझ बूझ से काम लेकर उस समस्या का निवारण

करना होगा जैसे, अवसर विशेष की तैयारी। उदाहरण स्वरूप- त्योहार, राष्ट्रीय पर्व, खेल प्रतियोगिताएँ अथवा विशिष्ट अथितियों के दौरे आदि। ऐसे में पूर्व नियोजित गतिविधियों में आवश्यकतानुसार परिवर्तन व संशोधन कर लें। इस संदर्भ में वरिष्ठ एवं अनुभवी लोगों तथा साथियों से भी परामर्श करें। यदि संभव हो तो आस-पास उपलब्ध साधनों का भी प्रयोग करके गतिविधियाँ करवाने की व्यवस्था कर लें। केंद्रों में करायी जाने वाली गतिविधियों में बच्चों की सक्रिय भागीदारी बढ़ाने की अधिक से अधिक कोशिश करनी चाहिए, क्योंकि बच्चों में स्वस्थ आदतें, स्नेह, समायोजन, शिष्टाचार, सद्भाव एवं सहयोग की भावना के पूर्ण विकास के लिए पूर्व-प्राथमिक शिक्षा ही नींव की ईंट बनती है जिसका आधार है, खेल आधारित शिक्षा। बस इस बात का ध्यान रखें कि खेल आधारित गतिविधियाँ बच्चों की क्षमता के अनुरूप हों, सुरक्षित वातावरण में हों, स्वतंत्र व बंधन मुक्त हों, गतिविधि आधारित हों, करके सीखने को बढ़ावा देने वाली हों, बच्चों को आंनदित करने वाली हों। स्पष्ट है कि पूर्व-प्राथमिक शिक्षा सच्चे अर्थ में तभी प्रभावी होगी जब उसे प्रयोग करने के तरीके उत्तम हों।

संदर्भ-ग्रंथ

बार्बलेट, एल. (2010), *व्हाई प्ले-बेस्ड लर्निंग? अर्ली चाइल्डहुड ऑस्ट्रेलिया. रिट्रीव्ड फ्रॉम* http://www.earlychildhoodaustralia.org.au/.../why_play-based_learning.ht

अर्ली रिर्टन्स : मनीतोबाज़ अर्ली लर्निंग एंड चाइल्ड केयर करीकुलम फ्रेमवर्क फॉर प्री स्कूल सेन्टर्स एंड नर्सरी स्कूल्स (2011), रिट्रीव्ड फ्रॉम http://www.gov.mb.ca/fs/childcare/pubs/early_returns_en.pdf

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (2005), *सीखना और ज्ञान*, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, नयी दिल्ली, पृष्ठ-15-17

सिंह, एस. (2010), *प्रारंभिक बाल शिक्षा, खेल-खेल* में, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, नयी दिल्ली, पृष्ठ-3-9

5

झरना क्यों रोती है?*

रेनु चौहान

आज के समय में पढ़ाई का क्या महत्त्व है, यह बात किसी से छुपी नहीं है। झरना कहानी भी आधारित है पढ़ाई के महत्त्व और एक अध्यापक की ज़िम्मेदारी पर। लेख में बताया गया है कि किताबी ज्ञान देने से परे अध्यापक के कुछ और भी कर्तव्य और दायित्व हैं, जिनका निर्वाह उसे पूरी ईमानदारी के साथ करना चाहिए। अध्यापक को जहाँ इस बात का ध्यान रखना होता है कि बच्चे की पढ़ाई में उन्नति हो रही है या नहीं, वहीं उसे उसके परिवेश को जानना भी अहम है क्योंकि विद्यार्थी की उन्नति या अवनति में उसके परिवेश का महत्वपूर्ण स्थान होता है।

कक्षा के आरंभ होते ही सबसे पहले अध्यापिका ने विद्यार्थियों से यह जानना चाहा कि क्या उन्होंने गृहकार्य कर लिया है। मॉनीटर ने एक-एक करके सबकी गृहकार्य की कॉपियाँ एकत्रित कर लीं। मॉनीटर ने अध्यापिका को बताया कि झरना आज भी अपना गृहकार्य नहीं करके आई है। आज तीसरा दिन है झरना न तो घर से काम करके आती है न ही कक्षा में ठीक से पढ़ाई की ओर ध्यान देती है। क्रोध के मारे अध्यापिका आग बबूला हो उठीं।

कड़क कर उन्होंने जब झरना से पूछा कि वो काम क्यूँ नहीं करके आई तो ठीक से उत्तर देने के स्थान पर आज भी उसने रोना शुरू कर दिया। इतना रोना कि रोते-रोते उसकी हिचकियाँ बँध गईं। परंतु, वो कोई संतोषजनक उत्तर नहीं दे पाई। अध्यापिका ने उसे कक्षा से बाहर निकाल दिया। अर्थात् गृहकार्य तो उसने किया नहीं था, कक्षा कार्य से भी वह वंचित रह गई। उसका आत्मविश्वास गिरता चला गया। थोड़े ही दिनों में उसके पास स्कूल छोड़ने के अतिरिक्त शायद कोई चारा न रह जाता, यदि अचानक एक दिन स्वैच्छिक संस्था की एक सक्रिय सदस्य नीतू दीदी स्कूल नहीं आ पहुँचती। यह संस्था शिक्षा के क्षेत्र में ही कार्य कर रही थी। तंग आई अध्यापिका ने झरना से संबंधित समस्या का ज़िक्र नीतू दीदी से किया। नीतू के

* लेख राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, नयी दिल्ली द्वारा प्रकाशित पुस्तक '*काठ की घंटियाँ*' से साभार

बार-बार पूछने पर भी झरना खुल नहीं पायी।

उस शाम जब झरना स्कूल से घर की ओर जा रही थी तो नीतू दीदी उसके साथ हो लीं। रास्ते में उससे बातें करने लगीं। जैसे-कहाँ रहती हो? घर जाकर क्या करती हो? किस समय पढ़ती हो? क्या तुम्हारे पास कॉपी व किताबें सब हैं आदि। बातों-बातों में नीतू ने जाना कि ग्यारह वर्षीया झरना के माँ-बाप मजदूरी करते हैं, वे सुबह ही घर से निकल जाते हैं। घर से जल्दी निकल जाने व देर से आने के कारण माँ घर का कोई काम नहीं कर पाती और घर का सारा काम झरना करती है। उसमें लकड़ी बीनना, पानी लाना, खाना बनाना व दोनों छोटे बच्चों को खिलाना आदि सभी शामिल है। माँ-बाप के आने तक वह सारा खाना बनाकर रखती है। जब तक वह खाना आदि बनाकर निबटती है, बेहद थक चुकी होती है और अँधेरा भी घिर आता है। घर में बिजली नहीं है। ढिबरी अथवा लालटेन की रोशनी में वह पढ़ नहीं पाती।

झरना ने नीतू से बात करते हुए एक दिन की घटना का ज़िक्र किया और बताया कि एक दिन पढ़ाई करते हुए उसे किसी कारणवश घर से बाहर जाना पड़ा। जब वो लौटकर आई तो उसने देखा कि छोटे भाई ने उसकी कॉपी फाड़ कर चिंदी-चिंदी कर दी है। रोने के अतिरिक्त वो कुछ न कर पाई। बात बताते-बताते झरना एक बार फिर रो पड़ी। तब तक झरना का घर आ गया था। नीतू ने दोबारा आकर झरना के माँ-बाप से मिलने की बात कहकर विदा ली।

अगले दिन नीतू और अध्यापिका, झरना के माँ-बाप से मिले। अध्यापिका ने बताया कि झरना पढ़ाई में अच्छी है। उसका स्कूल नहीं छुड़ाना चाहिए। पिछले कुछ दिनों से वो पढ़ाई में ध्यान नहीं दे रही है। धीरे-धीरे जब समस्या माँ-बाप के सामने रखी गयी तो वो जैसे सोते से जगे हों। उन्हें पता ही नहीं था कि क्या हो रहा है। गनीमत है कि वो भी चाहते थे कि झरना स्कूल जाए और पढ़े। हो सकता है इसमें एक कारण स्कूल में अवकाश के समय मिलने वाला भोजन 'मिड-डे-मील' हो। बहरहाल, कारण जो भी हो, उन्होंने सहयोग करने का आश्वासन दिया। शायद घर के कुछ काम की ज़िम्मेदारी माँ-बाप ने ली हो। इससे झरना की स्थिति में सुधार हुआ। वह एक बार फिर से पढ़ाई में चमक उठी।

यह केवल एक उदाहरण था। ऐसे अनेकों उदाहरण हैं, जिनमें बच्चे के परिवेश को जाने बिना हम अपने ढंग से उन्हें पढ़ाते हैं। यही नहीं हमें उससे ढेरों अपेक्षाएँ भी होती हैं और हम यह भी नहीं सोचना व जानना चाहते कि जो जानकारी हम उसे देना चाहते हैं अथवा दे रहे हैं क्या वो उसके अनुकूल है?

यहाँ एक और उदाहरण देना चाहूँगी कि जिस बच्चे ने कभी खरहा और खग देखा न हो उसे 'ख' से खरहा अथवा खग पढ़ाना तथा अन्य बच्चों को 'ए' से एरोप्लेन तथा 'अ' से अनार पढ़ाना कहाँ तक उचित है। 'क' से कबूतर, कुँआ, काला, कमल सभी हैं। यह हम पर निर्भर करता है कि हम बच्चे को कहाँ से आरंभ कर कहाँ ले जाना चाहते हैं। वास्तव में ये हम पर नहीं बच्चे के परिवेश से मिली जानकारी नियत करेगी कि क्या व किस ढंग से

पढ़ाना है। पढ़ाना, हुबहू पाठ को पढ़कर सुनाना नहीं है वरन् उसका अर्थ बनाना, उसके संदर्भ को पकड़ना, अपने अनुभव उसमें जोड़ पाना तथा उसका आनंद लेना भी है। इस तरह की पढ़ाई में योगदान देने के लिए अध्यापक को बच्चे के तीनों प्रकार के परिवेश की जानकारी होना आवश्यक है तभी वो अपने कार्य में सफल होने की सोच सकता है। इसीलिए बच्चे के सांस्कृतिक, सामाजिक व आर्थिक परिवेश को जानना बहुत आवश्यक है। यहाँ परिवेश से हमारा मतलब है कि बच्चा कैसे परिवार से है, पारिवारिक आय तथा परिवार के सदस्य कितने हैं? पारिवारिक रोज़गार क्या है? क्या माँ भी नौकरी पर जाती है? घर का वातावरण कैसा है? क्या परिवार के सदस्यों में सामंजस्य है? पति-पत्नी में आपसी समझदारी कैसी है। क्या परिवार रूढ़िवादी, कट्टर, अंधविश्वासी है? किस धर्म व संप्रदाय से संबंध रखते हैं? किस प्रकार के संस्कार बच्चों को दिए जाते हैं? जैसे परिवार में बड़ों का सम्मान, लड़का-लड़की में भेदभाव, परिवार में महिला का सम्मान आदि। तीनों परिवेश आपस में संबंधित हैं तथा बच्चा इनसे अछूता नहीं रह सकता। परिवेश के अनुरूप ही पढ़ाई के ढंग व उसमें उदाहरणों का समावेश करना आवश्यक है। स्थानीय वस्तुओं, बोलियों, पर्वों, पकवानों व वातावरण से लिए गए उदाहरण उन्हें अधिक सटीक तथा आसानी से समझ आने वाले प्रतीत होंगे।

पहाड़ पर जाकर यदि हम वहाँ प्रायः दिखाई देने वाले पशु-पक्षियों, उनके व्यवहार व खान-पान की बात करेंगे तो बात सबको समझ आयेगी। यही कारण है कि प्रत्येक स्थान के अपने लोक गीत व लोक कथाएँ होती हैं जो बच्चों को अत्यंत प्रिय होती हैं। क्योंकि वे उनके दिल के करीब होती हैं। उन्हीं के वातावरण से चुनी गई होती हैं। यदि अध्यापक को वहाँ के परिवेश की जानकारी होगी तो उसकी पढ़ायी गई बातें व जानकारी उनके परिवेश में से निकल कर आयेगी। जो कि बच्चों को न केवल सुगमता से समझ आएंगी, अपितु उनके दिल के करीब होंगी। बिहार व झारखण्ड के गाँवों में यदि दीपावली के स्थान पर उनके स्थानीय पर्व छठ पर्व व सुरगुल तथा धासुकों व मालपुए जैसे पकवानों की बात की जाए तो यकीनन बात न केवल सभी बच्चों को समझ आ जायेगी, अपितु बात उनके होठों पर मुस्कान व आँखों में चमक भी ले आयेगी।

यदि हमें अपने लक्ष्य की जानकारी हो तो यकीनन हम बेहतर ढंग से व अधिक आत्मविश्वास से अपने लक्ष्य तक पहुँच सकते हैं। शिक्षा प्रणाली को हम नहीं बदल सकते, लेकिन किस ढंग से पढ़ना है, किस ढंग से बच्चे को समझना व समझाना है, यह बदल सकते हैं, क्योंकि इसमें हमारी महत्वपूर्ण भूमिका है। यहाँ एक बात और ध्यान देने योग्य है कि परिवेश की जानकारी को हमें भ्रांतियों के रूप में भी नहीं लेना है। कई लोग यह मानकर चलते हैं कि गरीब विद्यार्थी का आई क्यू भी कम होगा। यह सोच सही नहीं है। हो सकता है उसके पास साधनों की कमी हो, परंतु उसी अनुपात में सोचने, समझने, सीखने व जिज्ञासा की भी कमी हो, यह आवश्यक नहीं है।

जॉन होल्ट की पुस्तक "इनस्टेड ऑफ एजुकेशन" के (हिन्दी अनुवाद) श्री सुशील जोशी द्वारा अनूदित तथा एकलव्य, भोपाल द्वारा प्रकाशित 'शिक्षा के बजाय' की पंक्तियों में से कुछ अंश उद्धृत करना चाहूँगी।

"कई शिक्षक जो खुद को आमूल परिवर्तनवादी कहते हैं, अक्सर मुझसे कहते हैं, "मुझे स्कूलों से नफ़रत है और मैं वहाँ उन्हें बदलने जा रहा हूँ।"

ऐसे लोग शायद ही कुछ बदल पाते हों। संभावना यही है कि वे गुस्से, हताशा और निराशा से आधे पागल हो जाएँगे। स्कूलों में उनके तौर-तरीकों से ही लोग समझ जाते हैं कि वे कोई साधारण-सा और सूझबूझ भरा सुझाव भी देते हैं तो उसे सरसरी तौर पर ही खारिज कर दिया जाता है। अत: हमें यह समझने की आवश्यकता है कि हमें स्कूलों को नहीं, स्वयं को बदलना है।

जॉन होल्ट के अनुसार- अपने छात्रों के प्रति ईमानदार रहो, उनमें से कुछ को स्कूल की समस्याओं से जूझने में मदद कर सको और अपने काम में थोड़ा बदलाव ला सको, इतना करना भी शायद आसान नहीं होगा।

हमारे देश में स्कूलों की समस्या साधनों व साध्य दोनों की है। लेकिन, साधनों के इंतजार में बैठे रह कर हम साध्य को भी ताक पर नहीं रख सकते। साध्य का संबंध केवल बेहतर पठन कार्यक्रमों से नहीं है। इसका संबंध इंसानों के प्रति विशेष रूप से बच्चों की आवश्यकताओं, रुचियों के प्रति एक अलग नज़रिए, अलग सोच से है। बच्चे के सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक परिवेश को समझकर हम अपने को बेहतर ढंग से क्रियान्वित कर सकते हैं।

अभी हाल ही में राँची व उसके आस-पास के गाँवों में शिक्षा के क्षेत्र में काम कर रही एक स्वैच्छिक संस्था के कर्मचारियों से बातचीत का अवसर मिला। जो मुद्दे विशेष रूप से उभर कर आए वह थे:

- बच्चे जिस कक्षा में पढ़ रहे हैं पढ़ाई में उससे कहीं पीछे हैं, अर्थात् दूसरी कक्षा में पढ़ने वाले बच्चे को अभी अक्षर ज्ञान भी ढंग से नहीं है। आश्चर्य हुआ जब तीसरी, चौथी व पाँचवीं कक्षा के बच्चों में से बीस बच्चों को ढूँढ़ पाना भी मुश्किल हुआ जो अच्छी तरह से पढ़ सकते हों।
- कई बच्चे व परिवारों की मुख्य रुचि पढ़ने में नहीं, अपितु अवकाश के दौरान मिलने वाले भोजन 'मिड-डे-मील' में रहती है। मिड-डे-मील के बाद आधा स्कूल छँट जाता है।

ऊपर दिए गए उदाहरण में समस्या साधन की नहीं, साध्य की है। यदि पढ़ाई रोचक, जीवंत व मानवीय हो तो.....? तो क्या बच्चे तब भी स्कूल छोड़ कर जाना चाहेंगे?

केवल कक्षा में ही बैठकर पढ़ाने के बजाय बच्चों को फील्ड में ले जाकर उनके साथ प्रयोग करना भी आवश्यक है। जैसे, बच्चों को पेड़-पौधों से दोस्ती कराने हेतु बाग-बगीचे में ले जाना, पुलिस स्टेशन, पोस्ट ऑफिस, बैंक, रेलवे स्टेशन को दिखाना उनकी कार्यप्रणाली को स्तर के अनुसार समझना तथा व्यावहारिक

ज्ञान अर्जित करना आदि। परंतु, दुर्भाग्यवश अभी भी स्कूलों में शिक्षा का परंपरागत रूप ही क्रियान्वित है।

शिक्षा में संदर्भयुक्त अच्छी पाठ्यसामग्री व चित्रों का भी महत्वपूर्ण योगदान है। ध्यान देने योग्य बात यह है कि बच्चे के सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक परिवेश को जाने बिना अच्छी पाठ्यसामग्री भी विकसित नहीं की जा सकती।

अतः बच्चे के परिवेश को समझकर ही एक आदर्श शिक्षाशास्त्री बच्चे को न सिर्फ शब्द ज्ञान, जोड़ कर उनका दोबारा प्रयोग कर पाना, अपितु पढ़ने का आनंद लेना भी सिखा पाएगा। विपरीत स्थिति में यदि हम इसी प्रकार बिना सोचे-समझे बच्चों पर पढ़ाई का बोझ लादते चले जाएँगे तो पढ़ाई उबाऊ व बोझिल हो जाएगी। ऐसे में यकीनन एक दिन झरना और उसके साथी या तो स्कूल छोड़ कर चले जाएँगे अथवा रोते रहेंगे।

❑❑❑

6

संवादों के दरकते सेतु

शारदा कुमारी*

कहा जाता है कि बच्चे नासमझ होते हैं, लेकिन हमेशा ऐसा नहीं होता है। परिस्थितियाँ बच्चों पर भी उतना ही प्रभाव डालती हैं, जितना बड़ों पर। परिवार में चल रही परेशानियों का बच्चों पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। यदि हम यह सोच लें कि बच्चों को कुछ समझ नहीं आता तो सही बात नहीं है। यह लेख एक बच्ची के घर में चल रही परेशानी पर आधारित है कि किस तरह एक अध्यापिका ने बच्ची की मनोस्थिति को ना समझते हुए अक्सर कक्षा के अन्य बच्चों के सामने उसे अपमानित करती थी।

नौ वर्ष से ऊपर की तो नहीं है वह, पर चेहरे पर पड़ी विषाद की लकीरें ऐसी मानो कोई प्रौढ़ा घर-गृहस्थी का बोझ लिए बैठी हो। आँखों में जिज्ञासा, कोमलता के साथ-साथ एक निरीह-सा भय व्याप्त है। चौकन्ना होने का भाव लिए वह अपनी कक्षा की दीवार से सटकर बैठी है, कक्षा के भीतर नहीं, कक्षा के बाहर। ऐसा नहीं कि कक्षा के सभी बच्चे बाहर हैं, वे सब कक्षा के भीतर ही हैं। पढ़ाई का काम चल रहा है यानि कि अध्यापिका भी कक्षा में मौजूद है। (इस वाक्य से कहीं यह न समझा जाए कि कक्षा में जब अध्यापक मौजूद नहीं होते तो सीखना-सिखाना नहीं होता।)

जब सभी बच्चे कक्षा में हैं तो यह तरुबाला बाहर क्यों बैठी है? जी हाँ, तरुबाला नाम है उसका, कक्षा चौथी में पढ़ती है और अध्यापिका द्वारा दंडित किए जाने पर कक्षा के बाहर बैठने को बाध्य है। किस बात पर दंड दिया गया होगा तरुबाला को? चुलबुलाहट कक्षा के अनुशासन (?) के दायरे में सिमट नहीं पा रही होगी, अपने साथी से बातें कर रही होगी, कोई पाठ्यपुस्तक नहीं लायी होगी या फिर कुछ याद करके नहीं आई होगी। शायद गृहकार्य पूरा नहीं किया होगा? आमतौर पर ये ही बचपन की कुछ वजहें होती हैं जिनको आधार बना कर बच्चों को विद्यालयों और घरों में भी दंड दिया जाता है। तरुबाला

* *वरिष्ठ प्रवक्ता,* जिला शिक्षा और प्रशिक्षण संस्थान, सेक्टर-7, आर.के. पुरम, नयी दिल्ली

को दंडित करने का क्या कारण है? पूछने पर उसकी अध्यापिका तो बिफर ही पड़ी, ''अरे कोई एक वजह हो तो बताऊँ। टाइम से नहीं आती। वर्दी में नहीं आती। कक्षा में मुँह नहीं खोलती। मुँह तो ऐसे बंद रहता है जैसे बर्फ की सिल्ली जमा रखी हो अंदर। सबसे बड़ी बात तो ये कि इसके बस्ते में कॉपी किताब एक नहीं मिलेगी। जानती हैं, क्या भर कर लाती है अपने बस्ते में? बताना क्या, अभी दिखाती हूँ इसका बस्ता।''

पता नहीं क्यों मुझे ठीक न लगा कि भरी कक्षा में तरुबाला का बस्ता खोला जाए। मुझे लगा कि यह उसकी निजता के अधिकार का हनन होगा। अतः बिफरती हुई अध्यापिका को शांत होने के लिए कहा। पर वह अभी भी बहुत उत्तेजित थीं, ''नहीं-नहीं मैडम आप देखिए, अभी देखिए इसका बस्ता, नहीं तो आप यह सोचकर जाएँगी कि टीचर बच्चों को समझते नहीं, न मेहनत करते हैं, बस उन्हें सजा देते हैं। आप सभी देखिए इसके बस्ते का सामान। ये कबाड़ क्या मुझे अपने सिर पर मारना है''। अपने-आपको संभवतया सही साबित करने के लिए वह अधीर हो उठी और तरुबाला से उसका बस्ता खींच लिया। अपना बस्ता वापिस लेने के लिए उस बच्ची के शरीर में हल्की-सी हलचल हुई पर उसकी हरकत फसल की कटाई के बाद खाली हुए खेतों में पड़े अकेले पंछी-सी निरीह जान पड़ी। मेरे साथ ऐसा होता तो मेरी मुठ्ठियाँ भिंच जातीं और आँखों से अंगारे बरसते पर उसकी आँखों में छाई कातरता और शिथिल पड़े हाथ अध्यापक की ताकत का विरोध न कर सके।

तरुबाला के होंठ कुछ कहने के लिए कंपकंपाए पर तब तक बस्ता खुल चुका था। अध्यापिका एक-एक करके सारा सामान बाहर निकाल रही थी - ''देखिए मैम, ये चिमटा, ये बटना-मैं यहाँ चटनी बनावाऊँगी न इससे, ये देखिए तीन-तीन चाकू। किसका गला रेतेगी ये, मेरा? ये पेचकस ये पतरी - - - - - - - -।''

तरुबाला के बस्ते से सामान का निकलना शायद बच्चों को सहन नहीं हुआ। उनकी आँखों में अपनी सहपाठिनी के लिए दुःख, उदासी, बेचैनी, दर्द उमड़ पड़ा था।

कुछ सुगबुगाहटों के साथ कक्षा में खामोशी व्याप्त थी। बच्चों की नेकदिली तरुबाला की भावनाओं से जुड़ रही थी। इससे पहले की तरुबाला सहित कक्षा के बाकी बच्चों की आँखों से चिंगारियाँ फूटतीं या घृणा के भाव उमड़ते, मैं अध्यापिका को कक्षा के बाहर ले आई। अध्यापिका व्यग्र थी तरुबाला के किस्से बताने के लिए। उन्होंने बताया कि पिछले चार-पाँच माह से वह कोई पुस्तक कॉपी कुछ नहीं लाती विद्यालय में। उसका बस्ता अटपटी वस्तुओं से अटा रहता है। पूछने पर किसी तरह का उत्तर नहीं देती। तरह-तरह के बहाने बनाती है जैसे-कॉपी चूल्हे के पास रखी थी, जल गई। किताब ट्रंक के पीछे सरक गई, हत्थे नहीं आती आदि-आदि।

आपकी कक्षा में भी तरुबालाएँ या तरुबाल होंगे। आप क्या करेंगे उनके साथ?

- कक्षा में सभी बच्चों के सामने तरह-तरह के सवाल पूछ कर उन्हें लज्जित करेंगे?
- उन्हें कक्षा के बाहर निकालकर दंडित करेंगे?

- कक्षा में होने वाली गतिविधियों में शामिल होने से रोकेंगे?
- अपने पास बुलाकर आत्मीयता जता कर उनसे संवाद स्थापित करेंगे और बात की तह तक जाने का प्रयास करेंगे?
- हो सकता है आप एक कदम और आगे बढ़ें और उनके अभिभावकों से मिलकर बच्चे की समस्या या तनाव को जानने की कोशिश करें,
- हो सकता है आप उनके साथियों से बातचीत करें और उनके व्यवहार के बारे में जानना चाहें।

अपनी समझ से आप बच्चे के साथ जो भी करेंगे, इस बात को कभी नहीं भूलेंगे कि बच्चे भी मानवोचित गरिमा के हकदार हैं और हमारी ओर से किसी भी ऐसे व्यवहार की अपेक्षा नहीं करते जिससे कि उनके आत्मसम्मान और अस्मिता को ठेस पहुँचती हो।

बच्चे हम अध्यापकों से किस तरह के व्यवहार की अपेक्षा करते हैं, इस मुद्दे पर चर्चा करने से पहले आप यह ज़रूर जानना चाहेंगे कि आखिर तरुबाला अपने बस्ते में कॉपी-किताब, पेंसिल आदि की जगह चाकू-छुरी आदि चीज़ें क्यों भर कर ला रही थी? कक्षा में प्रताड़ना सहने के बावजूद भी वह अध्यापिका के कहे अनुसार पुस्तकें इत्यादि क्यों नहीं ला पा रही थी? आपको यह तो महसूस हो ही रहा होगा कि तरुबाला के साथ निश्चित रूप से कोई बहुत बड़ी बाध्यता होगी जिसके रहते वह अध्यापिका के बार-बार कहने, लज्जित एवं दंडित होने के बावजूद अपना व्यवहार नहीं बदल पा रही थी या फिर आप यह सोच रहे हैं कि 'बड़ी ढीठ और बेशर्म किस्म की लड़की होगी तरुबाला जो सज़ा पाने को तो तैयार है मगर कहना मानने को तैयार नहीं।' तरुबाला के बारे में या किसी भी बच्चे के बारे में अपनी राय ज़ाहिर करने से पहले क्या ज़रूरी नहीं कि हम उसके साथ संवाद स्थापित करें। क्या हम इतने लाचार, बेबस, अक्षम हैं कि बच्चे के मानस में चल रहे झंझावातों की पहचान न कर सकें? फिलहाल आप यह तो जानना ही चाह रहे होंगे कि तरुबाला के साथ क्या विवशताएँ जुड़ी हुई थीं।

मैंने तरुबाला और अपने बीच की दूरियों को पाटने के लिए अथक प्रयास किए और पता चला कि वह बस्ते में जो कुछ भी भरकर लाती है उसकी मुख्य वजह उसके पिता का उसकी माता के प्रति व्यवहार है। उसने बताया – ''जे बटना मैं चटनी पीसन ताई थोड़ी न लाई। बे तो जब पापा काम से लौट बे न तो अम्माँ पे खूब गुस्साते। नूँ ज़ोर-ज़ोर से चीखे-अरी छिनाल दिन भर मस्ताती रहै बीगी। ढंग से तरकारी न बन सकत तोपे। ये बटना से तोरा सर फोड़ कर मसल दूँगा।'' तरुबाला क्या कोई भी बच्ची नहीं चाहेगी कि उसकी माँ का सिर फोड़ा जाए। बस माँ को बचाने के लिए वह हर उस वस्तु को अपने बस्ते में छिपा लेती है जिसका नाम उसका पिता माँ को मारने के लिए लेता है, क्योंकि तरुबाला के अनुभव उसे बता चुके हैं कि पूरे घर भर में उसका बस्ता एकमात्र ऐसी जगह/वस्तु है जिसे उसके पिता ने कभी न देखा न हाथ लगाया है और न ही देखने की ज़रूरत समझता है।

अब आप ही बताएँ कि तरुबाला का बालमन अगर माँ की जान बचाने के लिए यह छोटा-सा प्रयास कर रहा है तो क्या कुछ गलत कर रहा है? क्या आप इस बात की ज़रूरत नहीं समझते कि अध्यापिका को तरुबाला के हृदय में चल रही हलचलों को जानना चाहिए था। यदि वह उसकी पारिवारिक पृष्ठभूमि में थोड़ा भी झाँकने की कोशिश करती तो उसे कक्षा की गतिविधियों से वंचित करने का दंड कभी नहीं देती। यहाँ मुख्य रूप से यह तथ्य उभर कर आता है कि बच्चों के सामाजिक, सांस्कृतिक संदर्भों को जाने-समझे बगैर सीखने-सिखाने की प्रक्रिया बेमानी होगी। तरुबाला को 'समस्याग्रस्त विद्यार्थी' की संज्ञा दी गई, उसे 'व्यवहारगत समस्याओं से ग्रस्त बच्ची' की श्रेणी में रखा गया। क्या वास्तव में वह समस्याग्रस्त बच्ची थी अथवा अपने परिवार की समस्या का अपने तरीके से हल ढूँढ़ने वाली एक समझदार बच्ची थी?

महान पोलिश शिक्षाशास्त्री यानुश कोर्चाक अपने एक पत्र में लिखते हैं कि हमें बालक के अंत:करण के स्तर तक ऊँचा उठना चाहिए, न कि उसे कृपा दृष्टि से देखना चाहिए। यह बड़ा सूक्ष्म विचार है, जिसे हम शिक्षकों को बड़ी गहराई से समझना चाहिए। सच्चा शिक्षक बच्चे को किन्हीं अलौकिक गुणों की खान या कोई आदर्श नहीं समझता, परंतु साथ ही वह इस बात को भी नज़रअंदाज नहीं कर सकता कि बच्चे जिन नज़रों से दुनिया को देखते हैं, अपने चारों ओर के वातावरण के प्रति उनकी जो भावनात्मक और नैतिक प्रतिक्रिया होती है, उसमें एक विशिष्टता, स्पष्टता, बालसुलभ सरलता, निष्कपटता और एक ख़ास तरह की बारीकी होती है। यानुश कोर्चाक के इस आह्वान का कि हमें बच्चों के अंत:करण के स्तर तक ऊँचा उठना चाहिए, अर्थ यही है कि बच्चे जिस प्रकार इस संसार को अपने मनो-मस्तिष्क से समझते हैं, उनका जो बाल-सुलभ विश्वबोध है, उसे शिक्षक को बड़ी बारीकी से समझना और अनुभव करना चाहिए। मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि मानवीय संवेनाओं के कुछ ऐसे पहलू हैं, जिनको आत्मसात किए बिना कोई भी व्यक्ति सच्चा शिक्षक नहीं हो सकता और इन सबमें सबसे प्रमुख बात है-बच्चे के अंत:करण में, उसके आंतरिक जगत में, उसके मन की दुनिया में पैठने की क्षमता, उसके सामाजिक-पारिवारिक सांस्कृतिक संदर्भों को जानने की चेष्टा। बहुत से अध्यापकों के साथ सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि वे बच्चों को कृपा का पात्र समझते हैं और यह भूल जाते हैं कि विद्यार्थी जीते-जागते इंसान हैं, जो विद्यालय में ज्ञान-बोध के ही नहीं अपितु सृजन और मानवीय संबंधों के जगत में पदार्पण कर रहे हैं। विद्यालयी पाठ्यपुस्तकें एवं अन्य प्रक्रियाएँ विद्यार्थियों द्वारा संसार को जानने-समझने, उसका बोध पाने का एक सबसे महत्वपूर्ण रूप हैं। बच्चे किस प्रकार का बोध पाते हैं, उनकी क्या आस्थाएँ बनती हैं, यह सब इस बात पर निर्भर करता है कि उनका मानसिक, बौद्धिक, नैतिक, भावनात्मक दूसरे शब्दों में उनका आंतरिक, पारिवारिक-सामाजिक जीवन कैसा होगा।

विद्यालयी शिक्षा से जुड़े अब तक के अपने अनुभव इस महान सत्य को तो स्थापित कर ही

चुके हैं कि बच्चे के जीवन में प्राथमिक कक्षाओं के अध्यापक की भूमिका कितनी विशाल होती है। नन्हे विद्यार्थी अपने अध्यापक में कितनी आस्था रखते हैं, शिक्षक और शिक्षार्थी का एक-दूसरे पर कितना विश्वास है, बच्चे अपने शिक्षक में इंसानियत का कैसा आदर्श देखते हैं-ये ही हैं शिक्षण के वे बुनियादी और सबसे जटिल नियम जिन्हें समझ लेने, आत्मसात कर लेने पर अध्यापक सच्चे शिक्षक बन जाते हैं। मौजूदा अध्यापक प्रशिक्षण कार्यक्रम अध्यापकों की तैयारी के लिए बहुत कुछ करते हैं। व्यक्तित्व पर प्रभाव डालने वाले साधनों की चर्चा करते हैं, बच्चों की रुचियों-रूझानों, विकासात्मक कार्यों को समझने की वकालत करते है, तरह-तरह की शिक्षण विधियों को पारंगत करने के लिए अथक परिश्रम करवाते हैं, नाना प्रकार की शिक्षण सामग्री तैयार करवाते हैं और सीखने के सिद्धांतों को मस्तिष्क में ठूँसने की भरसक कोशिश करते हैं पर शैक्षिक परिघटनाओं के बीच सूक्ष्मतम और जटिलतम परस्पर संबंधों, अन्योन्याश्रयों का अध्ययन करने के मौके नहीं देते जो अध्यापकीय जीवन के लिए सबसे महत्वपूर्ण हैं। हम मानते हैं कि हमारे प्रशिक्षण कार्यक्रम बौद्धिक अलगाव का शिकार हैं, वे हमें इस तरह की तैयारी के साथ विद्यालय नहीं भेजते जिससे कि हमारे रोजमर्रा के विमर्श में अकादमिक बहसें शामिल हो सकें और हम बच्चों को केंद्र में रखकर उनके बारे में कुछ सोच सकें। पर इस सबके लिए क्या ज़रूरी है कि हम प्रशिक्षण कार्यक्रमों की पहलकदमियों का इंतजार करें। हम यदि बच्चों के लिए हैं तो क्यों नहीं हम स्वयं अपने आप में बदलाव लाने की कोशिश करें।

❑❑❑

7

पतंगोत्सव का आयोजन

कपिल गहलोत*

कुछ बच्चों को विद्यालय आना बड़ा ही नीरस कार्य लगता है क्योंकि बहुत से विद्यालयों में विद्यालयी दिनचर्या में कभी कोई बदलाव नहीं होता है। यदि विद्यालय में कुछ नए विविध कार्यक्रम जैसे गीत-संगीत एवं उत्सवों का आयोजन किया जाए तो विद्यालय न केवल अपने विद्यार्थियों के लिए अपितु बाहरी बच्चों के लिए भी आकर्षण का केंद्र बन जाएगा।

दिल्ली के देहात क्षेत्र में रक्षाबंधन के पर्व को 'सिलौना' नाम से संबोधित किया जाता है। इस क्षेत्र में इस दिन मेले का आयोजन किया जाता है और खूब पतंगें उड़ायी जाती हैं। जब मैं अपने बचपन को याद करता हूँ तो सोचता हूँ कि मैं भी सिलौने से कई दिन पहले ही पतंगों और चरखियों की तैयारियाँ चालू कर देता था। अब बच्चों को देखकर मैं सोचता हूँ कि पता नहीं बच्चों का वो रंग-चाव कहाँ गया? मेरे इस भ्रम को तोड़ा कुछ बच्चों की बातचीत ने, जो इसी बारे में बात कर रहे थे कि इस बार सिलौने पर वो क्या-क्या करने वाले हैं।

मैं, दिल्ली देहात के क्षेत्र में पला-बढ़ा हूँ और यहीं पर प्राथमिक विद्यालय में कार्यरत हूँ। मुझे अपने विद्यार्थियों में अपने बचपन की छवि दिखाई पड़ती है। प्रार्थना-सभा से कक्षा तक आते-जाते बच्चों और आधी छुट्टी में तफरी करते बच्चों की बातों पर ध्यान देना मुझे बहुत पसंद है और अब यह मेरी आदत हो गई है क्योंकि उनकी बातों को सुनकर एक बालमन को आसानी से पढ़ा जा सकता है। सिलौने से कुछ दिन पहले जब मैं विद्यालय परिसर में बने चबूतरे पर बैठा था तो मेरा ध्यान कुछ बच्चों की बातचीत ने अपनी तरफ आकर्षित किया। मैंने अपने कान खड़े किए तो पता लगा कि आगामी सिलौने के विषय में चर्चा हो रही थी। एक बच्चा बोला, ''मैंने तो अब पैसे बचाने चालू कर दिए हैं, ढेर सारे रुपये इकट्ठे करके निरी पतंगें लाऊँगा।'' एक लड़की बोली, ''मैं तो पतंग नहीं उड़ाती हूँ क्योंकि उस दिन

* *अध्यापक,* निगम प्रतिभा सह-शिक्षा आदर्श विद्यालय, बापडौला गाँव, नयी दिल्ली-43

राखी बाँधने में ज़्यादा मज़ा है, इससे मुझे पैसे भी मिलते हैं।'' अन्य बच्चा बोला, ''मेरे घर की छत पर मुँडेर नहीं है और गली में पतंग उड़ाएँ तो तारों में पतंग अटक जाती है।'' इस प्रकार भाँति-भाँति की बातों ने मुझे विद्यालय में 'पतंगोत्सव' के आयोजन का सुझाव दिया। मैंने प्रधानाचार्य और अन्य साथियों से इस बारे में बात की तो 'पतंगोत्सव' का बिल सदन में पास हो गया। बच्चों ने तालियाँ बजाकर, और ज़ोर-शोर से प्रस्ताव का स्वागत किया।

विद्यालय में 'पतंगोत्सव' का आयोजन एक अभूतपूर्व कार्यक्रम था। इसकी तैयारियों, समय, सामान इत्यादि की पूछताछ के लिए बच्चों की टोलियाँ, शरमाते-सकुचाते और एक-दूसरे के पीछे छुपते हुए मेरे पास आयीं और सारी बातें पूछीं। यह जानकारी देने के लिए कक्षा चतुर्थ व पंचम के बच्चों के लिए एक कार्यशाला का आयोजन किया गया, जिसमें उन्हें अख़बार की कतरनों से, थैलियों से सजावटी पतंगें बनाना सिखाया गया। बच्चों ने बहुत सुंदर-सुंदर पतंगें बनायीं, जिनको पतंगोत्सव के दिन विद्यालय परिसर में सजाया गया। तैयारियाँ करते-करते ''पतंगोत्सव'' का दिन आ पहुँचा।

सुबह से ही इंद्रदेव खुश थे और झमाझम बारिश आयी थी। मैं जैसे ही विद्यालय पहुँचा, बच्चों के चेहरे देखने लायक थे। चेहरों को पढ़कर ऐसा लगता था कि यदि इंद्रदेव उनकी पकड़ में आ जाए तो '' गई भैंस पानी में''। ख़ैर बच्चों से बातचीत की गयी और ''पतंगोत्सव'' को कुछ दिनों के लिए स्थगित कर दिया गया।

आखिर पतंगोत्सव मनाया गया। इंतज़ार की घड़ियाँ खत्म हुईं और पतंगोत्सव का दिन आ गया। सुबह सुहावनी थी। बारिश के आसार नहीं थे। मेरे विद्यालय पहुँचने से पहले पतंगबाजी चालू हो चुकी थी। थोड़ी देर मैंने भी पतंग उड़ायी और समझाया कि आधी-छुट्टी के बाद पतंगें उड़ाएँगे। आधी-छुट्टी तक का समय, ना तो मेरे से और ना ही बच्चों से, काटे कट रहा था। ख़ैर, 11 बजे और हम सब अपनी-अपनी पतंगों, चरखियों, टोपियों इत्यादि के साथ विद्यालय मैदान में आ डटे। एक तरफ़ मेरी टोली थी, तो दूसरी ओर अन्य अध्यापिका साथियों की। पतंगों की आपसी लड़ाई देखते ही बनती थी। विद्यालय के आकाश में चारों तरफ पतंगें ही पतंगें थी। जिनके नाम परी, चिड़ा, लाठी, चाँद, सूरज, दुरंगा, तिरंगा, पुच्छल इत्यादि चीखे-चिल्लाए जा रहे थे। जो समय सुबह बिताए नहीं बीत रहा था वो अब सरपट भागने लग गया। बच्चों ने खूब पेंच लड़ाई, खूब पतंगें लूटीं और सद्दी-माँझा नाप-नापकर उधार लिया व दिया। कुछ बच्चों ने पतंगों पर संदेश भी लिखे थे- 'आई लव मम्मी', 'मेरा देश महान', 'चोरी करना पाप है' इत्यादि। विद्यालय में ''वो काटा'', ''वो मारा'', ''पकड़'', ''भाग'' की आवाजें चारों तरफ़ गूँज रहीं थी।

पतंगबाजी करते-करते छुट्टी का समय आ पहुँचा। बच्चों को लेने आए कुछ अभिभावकों ने भी खूब आनंद उठाया। जो बच्चे छुट्टी की घंटी सुनते ही भागते थे वो आज समझा-बुझाकर घर भेजने पड़े। उत्सव को आयोजित हुए आज कई दिन बीत गए, पर उसकी चर्चा, पेड़ों पर लटके पतंगों के ढाँचे रह-रहकर उस दिन की याद दिलाते हैं।

❑❑❑

8

विद्यालयों में विशेष सप्ताह कैसे मनाएँ?

अपर्णा पाण्डेय*

विद्यालयों में विशेष सप्ताह के आयोजन की सार्थक पहल कैसे की जाए? किस तरह बच्चों को उनके आस-पास होने वाली बातों की जानकारी प्रभावी तरीके से दी जाए? कैसे किसी विशेष सप्ताह के प्रति बच्चों को जाग्रत करके उन्हें इसके विषय में दिलचस्प तरीके से सूचनाएँ दी जाएँ? पाठ्यपुस्तक की सामग्री के अतिरिक्त भी बहुत-सी चीजें जानने के लिए हैं, वे क्या हैं? इन बातों के प्रति बच्चों को जागरूक करने का दायित्त्व सभी शिक्षकों का है। यह लेख कुछ ऐसे ही सवालों के जवाब दे रहा है।

किसी भी विषय के प्रति छात्रों को जागरूक बनाने के लिए शिक्षक और विद्यालय की ख़ास ज़िम्मेदारी मानी जाती है। चाहे वह मूल्यों की शिक्षा की बात हो या नैतिक शिक्षा की। पर्यावरण जागरूकता, स्वच्छता तथा साफ-सफाई की बातें हों या फिर ट्रैफिक नियमों के पालन की बात हो, शिक्षक इन बातों को विद्यालय में कैसे पढ़ाएँ? इसके लिए किसी विषय-विशेषज्ञ की ज़रूरत नहीं है। प्रश्न उठता है कि जो कुछ भी हम बच्चों को सिखाना चाहते हैं, क्या वह विषय पाठ्यपुस्तकों में सम्मिलित हो तभी पढ़ाया जा सकता है या यूं कहें कि बच्चों को तभी समझ में आता है? वास्तव में ऐसा नहीं होता। जब बहुत रुचिकर साहित्य जैसे-प्रेमचंद की कहानियाँ या शेक्सपियर के नाटक पाठ्यपुस्तक में सम्मिलित किए जाते हैं तो अध्यापकों को उन्हें पढ़ाना एक भारी ज़िम्मेदारी का काम लगने लगता है, क्योंकि अब तो छात्रों को उसके पैराग्राफ की व्याख्या करनी पड़ती है, पाठ पर आधारित प्रश्नों को याद करना पड़ता है। ऐसे ही सामाजिक विषय चाहे वे पर्यावरण से संबंधित हों या अन्य, ये विषय किसी व्यक्ति विशेष या समाज विशेष से जुड़े हुए नहीं हैं, बल्कि देश का हर व्यक्ति चाहे वह किसी भी वर्ग या समूह का हो, उससे जुड़ा होता है। जैसे-अगर विद्यालय में भू-जल सप्ताह ही मनाना हो, जैसा

* *असिस्टेंट प्रोफ़ेसर* (भूगोल), राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविंद मार्ग, नयी दिल्ली-110016

कि जुलाई माह में उत्तर प्रदेश सरकार ने सभी विद्यालयों को मनाने का आदेश पारित किया था। विद्यालयों के लिए ज़रूरी है कि इस विषय की गंभीरता को समझें। यह विषय सामाजिक विज्ञान या विशेषकर भूगोल से ही संबंधित नहीं है, भूगोल के शिक्षक को ही इसकी ज़िम्मेदारी नहीं दी जा सकती कि वह इसके बारे में सोचे और क्रियाकलाप का आयोजन करवाए। आवश्यकता इस बात की है कि जो भू-जल पृथ्वी पर विद्यमान है उसकी उपयोगिता और महत्त्व को समझने और समझाने की बातों का दायित्व सभी विषयों के शिक्षकों का हो, चाहे वह शारीरिक शिक्षा के अध्यापक हों या कला के। भू-जल में धीरे-धीरे कमी आती जा रही है उसके जो भी कारण हैं जैसे-बढ़ती जनसंख्या, बढ़ता वैश्विक तापमान, प्रदूषण आदि। इन सभी पर कक्षा में चर्चा की जानी चाहिए। कक्षा के प्रत्येक छात्र तथा छात्रा को प्रेरित किया जाना चाहिए कि वह अपने घर में उपयोग में आने वाले पानी के स्रोत के बारे में जानकारी एकत्र करे, चाहे वह नगर पालिका द्वारा आने वाला सप्लाई का जल हो या कुएँ अथवा बोरिंग से आने वाला जल। अनेक प्रकार के प्रश्न दिए जा सकते हैं। इन प्रश्नों के उत्तर छात्र अपने घर में बड़े-बुज़ुर्गों से या अपने आस-पड़ोस के लोगों से जानकारी एकत्र कर प्राप्त कर सकते हैं। समुदाय द्वारा शिक्षा प्राप्त करने का यह भी एक तरीका है। जैसे कुआँ कितना पुराना है? कितने फीट गहरा है? कुआँ ढका हुआ है या खुला हुआ है, कुएँ का जल किस-किस कार्य हेतु प्रयोग में लाया जाता है? कुएँ का पानी पहले से सूख गया है या बढ़ा है? कुएँ की सफाई कैसे की जाती है? इसको साफ करने में किन-किन दवाइयों का उपयोग किया जाता है? बच्चे इस तरह का प्रोजेक्ट बहुत उत्साह से करते हैं और कक्षा में आपस की चर्चा भी बहुत ज्ञानवर्धक होती है। ज़्यादातर विद्यालयों में ऐसे दिवस या सप्ताह औपचारिक रूप से मनाए जाते हैं, जिसमें विद्यालय के छात्र/छात्राओं को एक स्थान पर एकत्र कर दिया जाता है। वहाँ शिक्षकों द्वारा पूरी तैयारी के साथ भाषण दिए जाते हैं और उस सभा में खड़े विद्यार्थियों पर इसका कितना असर हो रहा है इसका पता इस बात से चलता है कि उस समय अनुशासन बनाए रखने में माहिर शिक्षक उस भरी सभा में एक-दो विद्यार्थियों का कान पकड़कर उन्हें मंच पर खड़ा कर उन्हें अपमानित करते हैं कि उक्त छात्र न तो सुन रहा था और न दूसरों को सुनने ही दे रहा था। प्रश्न यह है कि क्या शिक्षक ने उस छात्र की परेशानी जानने की कोशिश की कि वह क्यों नहीं सुन रहा था? करीब तीन हजार छात्रों की संख्या वाले विद्यालय में बिना माइक्रोफोन के मंच पर उपस्थित शिक्षक की बात उस तक पहुँच रही थी? क्या कक्षा में किसी भी अध्यापक ने उससे इस विषय पर कोई भी चर्चा की थी? आखिर हमारी अपेक्षा इन अबोध विद्यार्थियों से क्या है? हम उन्हें कैसे ज़िम्मेदार नागरिक बनना चाहते हैं, जबकि हम शिक्षक ही अपनी ज़िम्मेदारी को बखूबी निभाना नहीं जानते। समय-समय पर विभिन्न सप्ताह तथा दिवस जैसे- यातायात सप्ताह, राष्ट्रभाषा हिंदी के लिए पाक्षिक समारोह, गांधी जयंती

आदि विद्यालयों में मनाए जाने की परंपरा है, जिन्हें शिक्षक अपनी अभिरुचि तथा प्रयत्न द्वारा सार्थक बना सकते हैं। यातायात के नियमों से जुड़ी बातों के विषय में जानकारी देना हर प्रबुद्ध शिक्षक का कर्तव्य है। इसके लिए विद्यालय के नज़दीक के थाने से संपर्क करके वहाँ के थानाध्यक्ष से आग्रह किया जा सकता है कि वह विद्यालय में आकर विद्यार्थियों को इसके संबंध में जानकारी दें। सरकार के विभिन्न विभागों में कार्यरत् सभी लोग विद्यार्थियों के लिए कुछ भी करने के लिए सहर्ष तैयार हो जाते हैं। बस पहला कदम विद्यालय को अपनी तरफ से बढ़ाना होता है। पहल तो विद्यालय को ही करनी होती है, जैसे अंग्रेजी पढ़ाने वाला शिक्षक हो या भूगोल पढ़ाने वाला अध्यापक उससे यह उम्मीद नहीं की जा सकती कि वह शब्दकोष के सारे शब्द जानता होगा या एटलस में दिए गए विश्व के सारे स्थान, नदी, नाले उसे याद होंगे। उसी प्रकार विभिन्न विषयों से संबंधित जानकारी हमें कहाँ से मिल सकती है, इसके बारे में भी हमें छात्रों को परिचित कराना होता है। यातायात के नियमों से जुड़ी जानकारी ट्रैफिक पुलिस से बेहतर कौन दे सकता है भला। इसके साथ-साथ विद्यार्थियों से यातायात के विभिन्न नियमों को चार्ट पेपर या तख्तियों पर बड़े-बड़े अक्षरों में लिखवा कर पेड़ों पर भी टाँगा जा सकता है, जिससे खेलते-कूदते समय भी विद्यार्थियों की नज़र बार-बार उन तख्तियों पर पड़ती रहे। ऐसा करने से बिना किसी ख़ास परिश्रम के ही यातयात के नियमों को समझने में मदद मिलती है। बच्चों को समूहों में चौराहे पर ले जाकर भी यातायात की व्यवस्था और उसके उल्लंघन की ओर ध्यान आकृष्ट किया जा सकता है। ख़ास बात यह है कि विद्यालय में इसके लिए किसी विशेषज्ञ की आवश्यकता नहीं होती है। हर ज़िम्मेदार शिक्षक से समाज की यही अपेक्षाएँ होती हैं।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा हमें अपने आस-पास के जीवन से संबंधित बातों से जुड़ने की बात करती है। पुस्तकीय ज्ञान जो हमारे जीवन से जुड़ा हुआ नहीं है वह उपयोगी नहीं होता। वह केवल एक सूचनामात्र होगा और हमें इस सूचना के भँवर से अपनी शिक्षा व्यवस्था को दूर निकालकर जीवन से जोड़ने का प्रयत्न करना होगा।

❑❑❑

अनुभव 9

आज जा रहा हूँ, कल न लौटने के लिए

जीवन सिंह ठाकुर*

एक शिक्षक सेवानिवृत्ति के समय कैसा महसूस करता है, उसके मन में उठने वाले सवालों को शब्दों में बयाँ करना थोड़ा मुश्किल है। इस लेख में एक शिक्षक के अनुभवों को बेहद ही खूबसूरती से बताया गया है। शिक्षण के दौरान शिक्षक के समक्ष आने वाली चुनौतियों और उनके समाधानों के अलावा उसके मन में चल रहे विचारों को भी प्रस्तुत किया गया है। एक शिक्षक अपनी सेवा से तो निवृत्ति ले लेता है, लेकिन उसकी यादों और उससे मिले अनुभवों से वह अपना दामन नहीं छुड़ा पाता। तो आइए, इस लेख के माध्यम से सेवानिवृत्ति के समय एक शिक्षक की मनोस्थिति जानने की कोशिश करें।

जिंदगी के चालीस बरस, लंबे चालीस बरस कैसे बीत गए? पता ही नहीं चला। बड़ा अजीब लगता है। यूँ महसूस होता है कि अरे! अभी-अभी तो सन् सत्तर-इकहत्तर था। मन गीले साबुन की तरह छूट कर, पूरे चालीस बरस पीछे चला जाता है। उस गीले साबुन को जितना पकड़ते हैं, वह उतनी ही तेजी से छूटता है। इस छूटने में खीझ भी है और खुशी भी। उम्र का फासला सिमट कर युवा आकार में बदलने लगता है। साबुन, युवा पलों में बदल कर समय के सामने 'सावित्री' की तरह खड़ा हो जाता है और प्राणों की भीनी-भीनी जीवंतता लौट आती है। वाकई, ये बरस फूलों की खूशबू पर सवार थे।

भीनी-भीनी और हौले-हौले चलती हवाओं की खुशबू और वक्त रंग-बिरंगी तितली बन गया था। उसके परों पर ये बरस केसर की क्यारियों में घुलते रहे।

हालाँकि, ये चालीस बरस इतने भी आसान नहीं थे। ये वक्त कठोर और चट्टानी चुनौतियों पर उगी हुई हरी घास थे। ये घास आश्वस्त करती थी कि अभी संभावनाओं के फूल, उम्मीदों की तितलियाँ, होठों पर मुस्कुराहट के अंकुर फूटेंगे, वे रातरानी की तरह अँधेरे में खुशबुओं के उजास बिखेरेंगे और दिन की तमाम तपिश और दुनियादारी की त्रासदियाँ तिरोहित होकर रातरानी की गंध में समा जाती थी। जिंदगी बड़ी

* 422, अलकापुरी, देवास, मध्यप्रदेश-455001

अजीब है, कठोर भी और बच्चे की मुस्कुराहट और किलकारी भी।

शिक्षक बन कर बच्चों के बीच आ गया था। पहली बार उन पहाड़ी रास्तों के कठोर घुमाओं से गुज़रते हुए, लू-लपट के बीच। एक सन्नाटे भरे रास्ते के आस-पास कुछ बैलगाड़ियाँ खड़ी थीं। बैलगाड़ियों की कतार के पीछे एक जीर्ण-शीर्ण सी इमारत थी। पूछने पर पता चला कि वह विद्यालय है। बैलगाड़ियों की कतार के बीच रास्ता तलाश कर मैं उस जीर्ण-सी इमारत के परिसर में आ गया था। मुझे आश्चर्य हुआ कि मुझे ज़रा-सा भी परायापन, अनजानापन, अपरिचय महसूस ही नहीं हुआ था। इमारत के परिसर में गहरा नीम का पेड़ था और दूर-दूर तक पहाड़ों की श्रृंखला थी, जिनमें बीच में नीलापन छाया हुआ था। मन अंदर तक उस नीले-नीले गहरेपन से भर उठा था। इमारत का फर्श कच्चा था। छत में यानी पटाव में, उजालदानों में कबूतर गुटुर-गूँ कर रहे थे। जैसे-मेरे जैसे अजनबी की शिनाख्त के बाबत विचार-विमर्श कर रहे हों। फटी टाट-पटरियों पर बैठे बच्चे पट्टियों पर कुछ लिख रहे थे। उस दिन मुझे ऐसा क्यूँ लगा कि मैं यहीं से कहीं गया था और फिर अपनों के बीच लौटा हूँ। शायद यही अपनापन मेरे अंतस से घुमड़-घुमड़ कर बाहर आ गया था। मैं उसी उजालदान में बैठे कबूतरों की गुटर-गूँ और बच्चों की किलकारियों में समा गया था। एक शिक्षक की ज़िंदगी का यह पहला दिन था। यह दिन पगडंडी बन कर मुझे सरपट भगा ले जा रहा था, एक अल्हड़ बालक की तरह और मैं उन्हीं का हिस्सा हो गया था। मेरे मन में बहुत से प्रश्न उठ रहे थे जैसे- एक अध्यापक बच्चों को क्या दे सकता है? कौन-सा और कैसा आश्वासन दे सकता है? और उनके उत्तर भी मेरे पास थे। वह बच्चों को एक खूबसूरत दुनिया का सपना दे सकता है। आँखों के बियाबान में दूर कहीं टिमटिमाती रोशनी के ख्वाब दे सकता है। देने को उसके पास क्या है? कठोर दुनिया से टकराकर चूर-चूर होती उम्मीदें, तिड़कते, बिखरते सपनों को निरंतर जोड़ते हुए, थामते हुए, बच्चों की उम्मीदों को थपकियाँ ही तो देता है। हर बार बच्चों के टूटते सपनों को एक आशा की डोर से बाँधकर दूर गगन में उड़ाता है, जहाँ से पूरी दुनिया दिख सके। आँखें टकटकी लगाये सपनों को, उसके नीलेपन को, हकीकत को अपने ख्वाबों में देखने लगते हैं। ख्वाबों की तामीर से घर, देश, दुनिया के निर्माण में कहीं अपनी छोटी-सी निर्माणकारी, रचनात्मक भूमिका तय होते देखना एक शिक्षक का भी तो सपना होता है, जिसका अक्स वह बच्चों की आँखों में, उनकी हँसी में, किलकारियों में देखता है।

पूरे, भरे-पूरे चालीस बरस मैं बच्चों की किलकारियों में रहा। मासूम और भोलेपन की दुनिया में रहा। बच्चों की निर्दोष आँखों की चमक में रहा। कभी उनके उदास चेहरों, तो कभी आँसुओं से भरी पलकों में रहा। वे होंठ जब मुस्कुराते थे तो लगता था, तपते रेगिस्तान में ठंडी हवाओं के झोंके आ रहे हों। वे कुछ कहते थे, मैं सुनता था। लेकिन, उनका ''कुछ कहना'', उनके उन शब्दों में अर्थों के विशाल भवन और दुनिया समायी होती थी।

किताबों के पाठ और कविताएँ, अक्षर-अक्षर, शब्द-शब्द शहद की मानिंद हो उठते थे। वाकई वह कक्षा सिर्फ कक्षा नहीं होती थी। वह मुस्कुराहट और उमंग से भरी डलिया होती थी जो आने वाले किसी उत्सव का पता देती थी। आज इन चालीस बरस लंबी किलकारियों, हँसते-खेलते, मुस्कुराते बच्चों की दुनिया से जा रहा हूँ। कितना सूना और सन्नाटा-सा मैं अपने चारों तरफ पा रहा हूँ। उस सन्नाटे में असंख्य मुस्कुराहटें, असंख्य किलकारियाँ और चहचहाहट है। फिर भी पता नहीं एक एकाकीपन मुझ पर उतर आया है और मैं आज मुझसे छूट रहे बच्चों की आँखों में, उनके चेहरों पर, उनकी मुस्कुराहट में अपना अक्स देख रहा हूँ। वे समझ नहीं पा रहे हैं कि मैं क्यों जा रहा हूँ और मेरी पलकों पर आँसुओं की रेलमपेल क्यूँ है? उन शिक्षकों द्वारा दिए गए मान-सम्मान को, उनके अंतस मन से मिले अपनेपन को महसूस करता हूँ, जिन्होंने मुझे ठेठ अपना समझा था और समझते रहे थे। रिश्तों की डोर से बँधे रहे। जाते वक्त यह डोर कितनी मजबूती से बाँध रही है। हम सभी पारिवारिक वातावरण में, पूरे सामाजिक जवाबदेहियों में रहे। उन अधिकारियों और जन-प्रतिनिधियों ने, नागरिकों ने बेहद अपना समझा, मान दिया, स्नेह दिया। उनके प्रति 'आभार' का शब्द कह कर 'अभिव्यक्त' नहीं किया जा सकता।

हालाँकि, विगत वर्षों में हममें से कई शिक्षक काफी परेशान रहे हैं। शिक्षक के पठन-पाठन के अनुभवों को न शासन ने, न ही विभाग ने कभी महत्त्व दिया। शिक्षकों ने अपने सक्रिय शैक्षिक जीवन में जो पठन-पाठन की, अध्यापन की तकनीक विकसित की, कुछ पाठ, कुछ मौलिक किताबें (अप्रकाशित) तैयार कीं, इन सबके प्रति विभाग की बेरूखी, उपेक्षा ने अच्छे परिणामों पर जैसे रोक लगा दी है। लंबे शिक्षकीय जीवन में कई शिक्षक, शिक्षा पर, शिक्षण तरीकों पर, किताबों पर, अध्यापन और बाल मनोविज्ञान पर मौलिक खोज संपन्न करते हैं। एक बड़ा परिणाम तथा उपलब्धि उनके पास होती है। लेकिन, राजधानी से आयातित कार्यक्रम, योजनाएँ ही सर्वेसर्वा होती हैं। जो कुछ करेंगे ऊपर वाले करेंगे। इससे शिक्षकों में विचलन, तल्खी, उदासी, नैराश्य फैला हुआ है। विभाग और शासन से ज़्यादा जन-प्रतिनिधियों को गंभीरता से इस पर विचार करना होगा। अविलंब कुछ शुरुआत करनी होगी।

जीवन में अनुभवों का विशाल गुलदस्ता मिला है। तल्खी भी, प्यार भी, लेकिन बच्चों के बीच जाकर शिक्षक सब कुछ भूल जाता है और वह सिर्फ बच्चों का हो जाता है। इन वर्षों में उनकी मासूम मुस्कुराहट, हँसी और उम्मीदों के लिए निरंतर अविराम लगा रहा। उनकी आशाएँ रहें, उमंग की बेल बढ़ती रहे, इसी उम्मीद से उदासी और आँसू भरी आँखों में सपनों के आकाश सँवारता रहा। क्या पता कितना सफल रहा-कह नहीं सकता। गाँव से जिले तक, जिले से प्रदेश तक, प्रदेश से दिल्ली तक के सम्मान मिले। लेकिन, एक शिक्षक के लिए बच्चों की विश्वास भरी मुस्कुराहट, उम्मीदों से लबरेज़ आँखों के सामने तमाम पुरस्कार, सम्मान सब बौने हैं। और अब लंबे दीर्घ और विशाल वर्षों

के पल-पल जीवंतता से भरे पलों के बाद आज सोच रहा हूँ कि रोज़ यहाँ से जाता था कि कल वापस लौटूँगा। लेकिन आज जा रहा हूँ, कल वापस नहीं लौटने के लिए।

लेकिन खाली हाथ नहीं लौट रहा हूँ। एक प्यार भरी, अपनेपन से पगी आँखों की रिश्तेदारी, निर्दोष मासूम मुस्कुराहटों, नि:स्वार्थ किलकारियों और विश्वास, स्नेहबंधन की अपार दौलत लेकर जा रहा हूँ। आज मैं अपने को जितना अमीर, जितना भरा-पूरा महसूस रहा हूँ कि यह सिर्फ मेरे दिल और दिमाग की विशाल दुनिया जानती है। पलकों को बंद करते ही ये तमाम प्यार मेरे आस-पास 'बीहू' और 'बैसाखी' गुनगुनाने लगते हैं। किलकारियाँ मेरे चारों तरफ भर जाती हैं। दुनिया का कोई दुख, कोई व्यंग्य, कोई तल्खी, परेशानी, इस 'अपनेपन' के सुरक्षा कवच को भेद नहीं सकती। जीवन में कई मौके आए, अपार परेशानियों से घिर गया, लेकिन इस अपनेपन, प्यारी मुस्कुराहटों की यादों ने उन तीखी, घायल करने वाली स्थितियों के हाथ थाम लिए और उनके हाथों में प्यार के फूल दिए।

सच कहूँ, विद्यालय, बच्चे, उनकी आँखें, उनके आँसू और मुस्कान, उनकी खिलखिलाहट में मेरा घर था। उस प्यारी दुनिया में मेरा घर तिनका-तिनका चुन कर बच्चों ने बनाया है। आज कहने को अपने घर जा रहा हूँ और आज मैं 'बेघर' हो गया हूँ। बेघर होना जिंदगी की कितनी बड़ी त्रासदी होती है। लेकिन, मेरा घर वहीं रहेगा। इतनी लंबी यात्रा उनको सौंप आया हूँ। उनका साथ, अपने साथ ले आया हूँ। इस तरह हम कहीं दूर नहीं जाएँगे। उन अहसासों के साथ प्यारी, खूबसूरत, अपनेपन से भरी दुनिया में रहेंगे। उनकी दुनिया के लिए रहेंगे।

शिक्षक साथियों! बच्चों की खुशियों, उनकी मुस्कुराहटों, खुशियों से भरे होठों, उनकी आँखों के सपनों का ध्यान रखना । अक्षर, शब्द, शहद की मानिंद उनके मानस में उतरे, एक दिन वे अपने देश, दुनिया को अपना समझें, दूसरों की खुशियों के लिए जिएँ। अपना प्यारा संसार रचें, जिसमें आप हम सभी रह सकें। बच्चों का हौसला, उनकी हिम्मत कभी नहीं टूटे, ये ख्याल रखना। यह सब लिखते हुए मेरी आँखें पूरी तरह से नम हैं। आँसुओं से पलकें भारी हैं। तमाम दृश्य झिलमिला रहे हैं। क्या कहूँ ... फिर कभी...।

❑❑❑

10

दीपू

बनवारी लाल शर्मा*

सभी बच्चों के समझने का तरीका अलग होता है। किसी को कोई माध्यम अच्छा लगता है, तो किसी को कोई और। अब ऐसे में एक शिक्षक का दायित्व यह है कि वह पाठ्य सामग्री इस प्रकार से रुचिकर बनाकर प्रस्तुत करे कि बच्चे उसे आसानी से समझ सकें। इसलिए एक शिक्षक के लिए यह जानना बहुत ज़रूरी है कि बच्चे पढ़ाई के किस तरीके में स्वयं को सहज महसूस करते हैं। एक शिक्षक के बच्चों को पढ़ाने के तरीके पर आधारित एक अनुभव यहाँ दिया जा रहा है।

मेरी कक्षा में दीपू सबसे झेंपू स्वभाव का लड़का था। कुछ पूछने के नाम पर वह केवल गर्दन ऊपर-नीचे कर देता, चुपचाप बैठा रहता। मैं समझ गया कि इससे प्यार से बातें कर सबसे पहले एक आत्मीय रिश्ता बनाना ज़रूरी है। एक दिन मैं स्वयं उसके पास गया, और थोड़ा सटकर इस तरह बैठ गया मानो मैं भी वहाँ उसके साथ ही पढ़ रहा हूँ। उसकी गतिविधि पर चुपचाप से निगाह रखता रहा। वह एक किताब लिए हुए था। किताब का शीर्षक था 'आम'। उसने आम के पेड़ को देखा और जहाँ-जहाँ आम लगे थे ऊँगली रखी, मानो उसे पढ़ रहा है। उसने एक-एक कर पूरी पुस्तक के पन्ने पलट दिए फिर उल्टी ओर से अँगुली रखनी शुरू कर दी। एक बच्चे के पास दूसरी पुस्तक थी, जिसमें पैसे छपे थे। दीपू उनको हाथ से लूटने की मुद्रा बनाकर जेब में रखने का अभिनय करने लगा। फिर उसने मुझे वह पैसों के चित्र दिखाए, मैंने भी उसी क्रम को दुहरा दिया इससे वह बहुत खुश हो गया। उसे लगा कि यह मेरे जैसे है (यानी कि मैं)। वह तपाक से बोला ''मेरी मम्मी के बटुआ में बोत से पीसाएँ है सरजी'' (सर, मेरी माँ के पर्स में बहुत सारे पैसे हैं) मैंने कहा अच्छा..... ! तो उसने आगे कहा ''पापा कूँ मम्मी पीसा देतिएँ मोय नाय।'' (मेरी माँ को पापा पैसे देते हैं, मुझे नहीं) मैंने उससे पूछा, ''तुम्हें मम्मी क्या-क्या देती हैं''। वह चुप हो गया। मैंने उससे फिर पूछा, ''तुम्हें

* *न्याय पंचायत समन्वयक,* सुठीर-नौहझील, मथुरा

मम्मी खाना (रोटी) देती हैं?" ....वह बीच में ही बोल उठा, "हाँ हाँ। दूध पीने को देती हैं।" मैंने पूछा, "तुम्हें दूध पीने को कब देती हैं?" वह बोला, "रात कूँ"। मैंने कहा, "अच्छा ये बताओ कि आपके यहाँ भैंस है?" वह बोला, "नहीं" फिर मैंने पूछा, "दूध कहाँ से आता है?" वह बोला, "दुकान से"। मैंने पूछा, 'दूध कौन लाता है?' 'जीजी' (जीजी)! उसका उत्तर पूर्ण था। बात जारी रखने के लिए मैंने उससे पूछ लिया, "दीदी दूध किसमें लाती हैं?", वह तपाक से बोला, "टिपन में (टिफिन में)"। मैंने पूछा, "टिफिन कैसा होता है?" उसने हाथ से टिफिन का आकार बनाया। मैंने उसे कागज़ और कलम निकाल के दी और कहा ''इस पर बनाओ'' उसने चित्र बनाया।

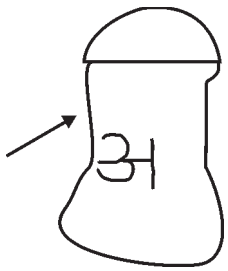

जब वह टिफिन के ऊपर एक लाइन बना रहा था तो मैंने पूछा, ''यह क्या है?'' वह बोला ''यह, कुंदा है हाथ में पकरिवे का (हाथ में पकड़ने के लिए यह कुंदा है)' मैंने उसे शाबाशी दी। उससे मैंने जब टिफिन लिखने को कहा तो उसने डिब्बे पर (अ) लिखा। अब मैंने उसे अपना नाम दीपू लिखने को कहा तो उसने दीपू को भी इसी तरह लिखा-अ। दोनों को पढ़ा। मैंने उससे घर-खाँट आदि बनाने को कहा, तो उसने इनका चित्र बनाया और उन पर जो नाम लिखा, वह भी (अ) ही था। पर जब उससे पढ़ने के लिए कहा गया तो उसने सभी चीजों के नाम ठीक-ठीक बताए। मैं समझ गया कि इसे पढ़ना-लिखना सिखाने के लिए कई तरीके अपनाने की ज़रूरत है। इसके बाद मेरा पहला प्रयास रहा कि कक्षा में बच्चों को अनुमान लगाकर पढ़ने के अवसर देना। मैं बच्चों से, और क्या खाया, क्या काम किया आदि बातें पूछता और जब वह बताते तो उन्हें ब्लैकबोर्ड पर लिखता जाता। इसके बाद दीपू से पूछता कि बताओ, 'तुम्हारी बतलायी चीजें/बातें कहाँ लिखी हैं? दीपू अनुमान लगाकर पढ़ने की कोशिश करता। इसी प्रकार कक्षा के अन्य बच्चों को भी अनुमान लगाकर पढ़ने के मौके देता। पढ़ाने-लिखाने के लिए और भी अनेक रोचक गतिविधियों का आयोजन किया। बच्चों से उनकी बतलाई बातों को लिखकर देने को कहा। मैंने देखा कि कोई भी बच्चा कुछ लिखता और मैं ज़रा-सी भी तारीफ़ कर देता तो बच्चों की खुशी का ठिकाना न रहता। मैं गलती होने पर डाँटता नहीं, बल्कि खुद ठीक कर देता। इससे बच्चों की समझ में भी बात आ जाती और दोबारा वह गलती होती भी नहीं। मैंने गौर किया कि दीपू की झिझक भी टूट रही है और वह पढ़ने-लिखने की कोशिश कर रहा है। एक दिन मेरी खुशी का ठिकाना न रहा, जब दीपू ने अपना नाम बिल्कुल सही ढंग से लिखा।

❑❑❑

11

पढ़ाने के कुछ अनुभव

आशा अय्यर*

सभी बच्चों के समझने का तरीका भिन्न होता है। इसलिए एक शिक्षक का दायित्व है कि वह सभी बच्चों को उनकी समझ के अनुसार पढ़ाए। शिक्षक को इस बात को लेकर सदैव सजग रहना चाहिए कि उसका पढ़ाया बच्चों की समझ में आ रहा है या नहीं। शिक्षक को कक्षा बच्चों की समझ के अनुसार केंद्रित रखनी चाहिए। कक्षा में कुछ भी नया कराने से पूर्व शिक्षक को उस विषय पर बच्चों का ज्ञान स्तर जाँच लेना चाहिए जिससे शिक्षक को पढ़ाने में और बच्चों को समझने में आसानी होगी। बच्चों को कक्षा में कैसे पढ़ाएँ? जानने के लिए पढ़िए यह लेख।

स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति लिए छः साल हो चुके थे। किसी-किसी दिन जी छटपटाने लगता कि किसी को बिठाकर ज़बरदस्ती पढ़ाऊँ। यही बात जब मैंने अपने पति के एक मित्र के सामने रखी तो वे तपाक् से बोले, ''तो आ के पढ़ाओ ना हमारे स्कूल में।'' यह बात थी पिछले साल जून की।

स्कूल खुलने के अगले ही दिन उन्होंने मुझे संदेश दिया कि मैं पाँचवीं कक्षा की कुछ ऐसी कन्याओं को पढ़ा दूँ जो उम्र के आधार पर पाँचवीं में तो आ गई हैं, लेकिन जिन्हें पहली कक्षा के स्तर का भी ज्ञान नहीं है। मैंने एक सप्ताह बाद आने का वादा किया क्योंकि मुझे भी ठीक से तैयारी करनी थी। मैंने सफ़ेद व रंगीन चॉक, कुछ चार्ट, 'एकलव्य' से कार्डों का पिटारा और किताबों की दुकान से कुछ चित्रों वाली किताबें खरीद लीं।

यह एक शासकीय कन्या विद्यालय था। मैं जुलाई की शुरुआत में वहाँ पहुँची तो उन्होंने अविलंब पाँचवीं कक्षा की बारह लड़कियाँ हाज़िर कर दीं। मुझे अच्छा लगा क्योंकि इसका मतलब था कि वे सच में तैयार थे। आनन-फानन में एक साफ-सुथरी दरी और बोर्ड भी आ गया। वे मुझे घेरकर बैठ गईं। मैं आ तो गई थी, लेकिन एकाएक ऐसा लगा कि कुछ कर भी पाऊँगी कि नहीं। नौकरी के दौरान तो एक निश्चित पाठ्यक्रम पढ़ाना होता था और यहाँ सारा दारोमदार मुझ पर ही था।

* एकलव्य द्वारा प्रकाशित शैक्षणिक संदर्भ (सितंबर-अक्तूबर अंक) से साभार

मैं उन सबके नाम पूछने लगी। तभी मन में एक विचार आया। मैंने चॉक का एक टुकड़ा उठाकर सबसे पहले नाम बताने वाली लड़की को देकर कहा, "चलो, अपना-अपना नाम भी बोर्ड पर लिखती जाओ।"

एकाएक चुप्पी छा गई। खुसुर-फुसुर भी शुरू हो गई।

मैंने पूछा, "क्या हो गया?"

एक जो सबसे मुखर थी बोली, "इनको लिखना नहीं आता है ना?"

"तुम्हें आता है?"

"हाँ ऽ ऽ ऽ!"

"तो आओ, अपना नाम लिखकर दिखाओ।"

उसने लिखा, "लछमी"

मैंने कहा, "अब इसे पढ़ो।" तो उसने पढ़ा-'लछमी।'

मैंने उस समय कुछ कहना उचित नहीं समझा, लेकिन नोट कर लिया कि उसे 'क्ष' का उच्चारण सिखाना है। मुझे ये भी समझ में आ गया कि कामकाज 'ट्रायल एंड एरर' प्रणाली से चलाना है। उसके आगे आकर लिखने के कारण दो अन्य लड़कियों ने भी लिखने में थोड़ी-सी रुचि दिखाई।

अंजलि और रानू ने भी सही लिखा लेकिन बाकी ने कोशिश भी नहीं की।

शेष के नाम इस प्रकार थे: टीना, काजल, निशा, नेहा, कामिनी, सुमित्रा, रीना, शालू, पिंकी।

पहले दिन तो मैंने उन सबको अपना-अपना नाम लिखकर घर ले जाने के लिए कहा। अभ्यास करने के लिए नहीं कहा। मैं देखना चाह रही थी कि उनमें से कितनी स्वयं लिखकर लाती हैं। शालू और अंजलि ने अपने माता-पिता और भाई-बहनों के नाम भी मुझसे लिखवा लिए।

अगले दिन वे सब अपने नाम का अभ्यास करके आईं, सिवाय सुमित्रा के जिसे बिल्कुल भी अक्षर ज्ञान नहीं था। उस दिन मैंने उनके पूर्व ज्ञान के बारे में निम्त बातें जान ली थीं:

1. सभी त्रुटिरहित हिंदी बोलती थीं, मगर लक्ष्मी के सिवा किसी को भी मात्रा ज्ञान न था।
2. लक्ष्मी और अंजलि के सिवा किसी को 20 के आगे गिनती नहीं आती थी। लिखी हुई संख्याओं को वे पहचान नहीं पाती थीं।
3. उन्हें संख्याओं के साथ स्थूल वस्तुओं का संबंध समझ में नहीं आता था।
4. वे इकाई, दहाई आदि की संकल्पना से अनभिज्ञ थीं।
5. उनमें से 4 को छोड़कर सबको 10 तक के पहाड़े रटे हुए थे, मगर उन्हें पहाड़े क्या होते हैं, ये पता ही नहीं था।
6. उनमें से एक को भी जोड़ने-घटाने का अर्थ नहीं पता था।

मैंने सोचा ये बच्चियाँ पहली कक्षा में आकर बैठने वाली पाँच साल की अबोध बच्चियाँ नहीं हैं, जिनसे मेरी कोई भी हिचकिचाहट या भूल-चूक छिपाई जा सकेगी। अत: हर कदम फूँक-फूँककर रखना होगा।

मैंने क्या किया?

मैंने सबसे पहले तो यह तय किया कि उन सबको गणित और हिंदी एक साथ पढ़ानी होगी क्योंकि एक तो थोड़े-से समय में चार कक्षाओं

की पाठ्यवस्तु उन्हें सिखानी थी और दूसरे कोई भी अन्य विषय मैं उन्हें तब तक न पढ़ा सकती थी जब तक कि वे हिंदी पढ़ना-लिखना नहीं सीख जातीं। फिर पहली से चौथी तक की हिंदी व गणित की पुस्तकें अच्छे से देखकर यह निश्चित किया कि उन्हें किस क्रम से क्या-क्या और कितना पढ़ाना है।

मैंने कक्षा 1 व 2 की 'खुशी-खुशी' उठाई और उन्हें पढ़वाने के लिए पाठ तय किया।

पहला चरण

हिंदी वर्णमाला और बारहखड़ी के साथ ही हिंदी में अंक व शब्दों में लिखे अंकों के चार्ट ले जाकर वहाँ टाँगे।

सबसे पहले शरीर के अंगों के नाम बताना तय किया क्योंकि इस संबंध में उनका पूर्वज्ञान पर्याप्त होगा, ऐसा मेरा विश्वास था। मैंने गर्दन के ऊपर के उन अंगों के नाम पहले लिखवाए जिनमें 'अ' एवं 'आ' स्वर आते हैं जैसे बाल, गाल, कान, नाक, माथा, आँख आदि।

मैंने यह निश्चय किया कि चूँकि ये लड़कियाँ थोड़ी बड़ी हैं और इन्हें संसार का अनुभव भी है, अतः अक्षर ज्ञान करवाने के लिए परंपरागत प्रक्रिया न अपनाई जाकर अन्य तरीके से पढ़ाया जाए। इसी योजना के तहत अनुनासिकता को सम्मिलित कर लिया। 'आँख' बोलते समय जानबूझकर 'आँ' की अनुनासिकता पर बल दिया, कहा कुछ भी नहीं।

मैंने हर दिन यह भी नोट करना आरंभ किया कि मुझे भविष्य में उन्हें कौन-कौन सी बातें बतानी हैं?

उन्हें वर्णमाला पढ़ाने में एक और बात जो मददगार थी कि कक्षा में नियमित रूप से बैठने के कारण वे पुस्तक व श्यामपट्ट पर सभी वर्णों व मात्राओं को देखती रहती थीं। इसका लाभ मैंने उठाया।

अगले दिन हमने लिखना सीखा-हाथ, हथेली, कंधा, गरदन, पेट, पीठ, सिर, घुटना। हमने जाँघ, काँख, दाँत (ये शब्द यहाँ की बोलियों में भी हैं) भी ले लिए और उनमें 'आ' की मात्रा डालते हुए मैं दाएँ हाथ की तर्जनी और अँगूठे से अपनी नाक दबाते हुए 'आँ' कहती और चंद्रबिंदु लगाकर बताती कि नाक से बोलते हैं तो ऐसा निशान लगाते हैं। वे स्वयं कहने लगीं कि ''हाँ, इसे चंद्रबिंदु कहती हैं हमारी मैडम।''

तीसरे दिन तक तो उन सभी को बहुत आनंद आने लगा था। वे मेरे पहुँचने से पहले ही भीतर के आँगन में झाड़ू लगाकर, दरी बिछा लेतीं और इसके साथ ही वे मेरे लिए एक कुर्सी भी लगाकर रखतीं। हालाँकि मैं रोज़ उन सबके साथ नीचे ही बैठती थी।

मैं पहली बार समाज के वंचित वर्ग के बच्चों को पढ़ा रही थी इसलिए मुझे उदाहरण देते समय बहुत सावधानी बरतनी पड़ती। मुझे उनके चेहरे के हाव-भाव से लेकर स्वर के एक-एक उतार-चढ़ाव के प्रति अतिसंवेदनशील रहना पड़ता था। मैं उनसे व्यवहार करते समय निरंतर खाँड़े की धार पर चल रही थी, इसका मुझे आभास रहता था।

ध्वनियाँ और उच्चारण

एक निजी प्रकाशन द्वारा छापी गई हिंदी की पाठ्यपुस्तक में से बारहखड़ी के पन्नों की फोटो

कॉपियाँ करवाकर कर मैंने हर लड़की को एक प्रति दे दी, जिससे उनको घर में लिखने-पढ़ने की सुविधा हो जाए।

उनकी कक्षा में हमारी पढ़ाई आरंभ होने के सातवें दिन मैंने उन्हें अ,आ,इ, आदि क्रम से साँस के टूटने तक बोलते रहने को कहा। उन्हें तो ये खेल बड़ा ही अच्छा लगा। वे तन्मय होकर अ ऽ ऽ ऽ ऽ आ ऽ ऽ ऽ ई ऽ ऽ ऽ करने लगीं। सुमित्रा का ऽ ऽ ऽ ऽ कू ऽ ऽ ऽ ऽ क ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ भी करने लगी। मैंने उसकी इस तन्मयता को भाँपते हुए तुरंत उन्हें स्वर और व्यंजन का अंतर बताया।

स्वरों के निर्बाध होने एवं व्यंजनों का उच्चारण स्वरों की सहायता से किए जाने की बात समझाई। सुमित्रा को ही सामने बुलाकर मैंने उससे कहा कि वह 'क' को लगातार बोले और बाकी से कहा कि वे बताएँ कि वे 'क' लगातार सुन पा रही हैं कि 'क अ ऽ ऽ ऽ सुन पा रही हैं।

यह प्रश्न मुझे उनसे अनेक बार करना पड़ा, तब कहीं जाकर वे इसका महत्त्व समझ पाईं। मैंने 'प' की सहायता से यह अंतर समझाया कि दोनों होंठ मिलकर तुरंत हट जाते हैं और जिस पल ऐसा होता है, उतनी ही देर 'प' सुनाई देता है, उसके बाद केवल 'अ ऽ ऽ ऽ ही सुनाई देगा। इस बात को सिद्ध करने के लिए हमने 'पा' एवं 'पू' को भी बोलकर देखा एवं सुना कि होंठों के मिलने तक ही 'प' सुनाई देता है, उसके बाद केवल 'आ अ ऽ ऽ ऽ या 'ऊ ऽ ऽ ऽ ही सुनाई देता है।

इस प्रयोग से वे मेरी बात मान गईं। इसमें उन्हें इतना मज़ा आने लगा कि वे हर व्यंजन के साथ ये खेल करना चाहती थीं। चार-पाँच वर्णों के साथ ऐसा कर लेने के बाद मैंने सुमित्रा को सामने खड़ा करके हर वर्ण का उच्चारण स्थान एवं उसमें लगने वाले प्रयत्न के बारे में उनसे बातचीत की।

उस दिन कब बारह बज गए हमें पता ही नहीं चला। हर साल अपनी कक्षाओं में यह सब बताती थी, लेकिन जैसा आनंद इन बच्चियों के चेहरे पर मैंने देखा, वैसा शायद पहले कभी किसी के चेहरे पर नहीं देखा।

मैंने एक और बात उन सबसे कही (मुझे नहीं पता कि यह उचित था या नहीं), ''आज जो ये बातें तुम लोगों ने सीखी हैं ना, ये तुम्हारी कक्षा की किसी और लड़की को नहीं पता होंगी। हो सकता है कि तुमसे बड़ी कक्षाओं की लड़कियों को भी न पता हों।'' मेरा उद्देश्य था उनकी नज़रों में उनके पढ़ने के प्रयत्न की महत्ता बढ़ाना।

इसका सुपरिणाम अगले ही दिन मिल गया जब लक्ष्मी और नेहा मुझे गेट पर ही लेने आ गईं और कहने लगीं, ''हमारे स्कूल की आठवीं की लड़कियों को स्वर, व्यंजन तो पता हैं पर आपने जो बातें बताईं वो सब तो उन्हें पता ही नहीं।'' इससे उनके मन में इस संतुष्टि और विश्वास ने जगह बना ली कि वे मेरे पास बैठकर कुछ ऐसा सीख रही हैं जो दूसरों के द्वारा सीखी जा रही बातों से अलग है।

शुरुआती कुछ दिनों में उनसे लिखित काम कम ही करवाया, मैं ही बोर्ड पर लिखती रहती।

धीरे-धीरे उनकी ओर से आग्रह होने लगा कि ''हम भी लिखें?'' तो मैंने उन्हें पहले बोर्ड पर ही लिखने को प्रेरित किया। स्वर के साथ व्यंजन को किस प्रकार मिलाकर लिखते हैं, यह समझाने के लिए मैंने उन्हें बैसाखी के सहारे चलने वाले व्यक्ति का उदाहरण दिया। वे इस सरलता से समझीं कि मैं भी चकित रह गई।

बोर्ड पर क् + अ = क लिखकर भी सिखाया।

उसके बाद उन सबकी सहायता से 'ह' तक के सारे व्यंजन हमने एक ही दिन में हलन्त् हटाकर लिख डाले। उन्हें हलन्त् की संकल्पना समझाने में भी कोई कठिनाई नहीं हुई।

वर्ण सिखाते हुए ही मैं 'अ' युक्त शब्द भी बोर्ड पर लिखती जाती थी।

क् + अ = कमल

ख् + अ = खटमल

ग् + अ = गजक आदि, आदि।

इस सारे में हमें केवल एक सप्ताह लगा। इस एक सप्ताह मैं लगातार उनसे बात करती रही जिससे मुझे उनकी पारिवारिक पृष्ठभूमि पता चली और यह जान पाई कि उनके अभिभावकों की औसत शिक्षा दसवीं तक ही है।

गणित सीखने में रुचि

इस दौरान हमने गणित में काफी तेज़ी से तरक्की की। इसका मुख्य कारण था गणित में उन सबकी असीमित रुचि। वे जल्द-से-जल्द जोड़, घटाना, गुणा, भाग-सब सीख लेना चाहती थीं, जबकि गिनती उन सबको बीस से पचास तक ही आती थी और उसमें भी उन्हें इकाई, दहाई, सैकड़े का कोई ज्ञान न था। मैंने उनसे कहा कि ये सब सीखने के लिए पहले सौ तक की गिनती सीखना आवश्यक है। वे मेरी किसी भी बात पर सहमति जतातीं तो इस प्रकार मानो मुझ पर बहुत बड़ा एहसान कर रहीं हों, कहने लगीं, ''चलो! ऐसा कर लेते हैं।''

उन्हें संख्याएँ सिखलाते समय मैं स्पष्ट थी कि अंक की अमूर्त संकल्पना को मूर्त रूप में लाने के लिए उसके लिखित चिह्न और इन्द्रियसम्मत साक्ष्य का साथ होना अपरिहार्य है। इसके लिए एक पुस्तक रखकर, बोर्ड पर लिखकर और मुँह से भी बोलकर-एक साथ तीनों काम करके एक की संकल्पना देना उचित लगा। इसी कारण सौ कंकड़ बीनकर सात दिन तक बिलकुल पूजा भाव से प्रतिदिन हमने एक से सौ तक की गिनती की। एक कंकड़ रखना, मुँह से एक कहना, एक को अंक व शब्द दोनों में ही लिखना-ऐसा हमने पूरी सौ की संख्या तक किया।

इस पूरे दौरान मेरे मन में एक शंका और थी कि मैं तो कभी गणित की शिक्षिका रही नहीं, ऐसे में मुझे इन सबको गणित पढ़ाना चाहिए या नहीं? इसकी चर्चा जब मैंने अपने पति से की तो वे बोले कि ''जब तुम अपनी बेटी को विश्वासपूर्वक पाँचवीं तक की गणित पढ़ा सकी तो इन्हें क्यों नहीं? और सभी विद्यालयों में पहली से पाँचवीं तक हर शिक्षक को हर विषय पढ़ाना ही पड़ता है। तुमने तो बाकायदा आठवीं तक की गणित की पुनः तैयारी की है। डरो मत! मैं हूँ तो, जहाँ कहीं भी तुम्हें कोई कठिनाई आएगी, मैं उसे दूर करूँगा।'' इस बात ने मेरा आत्मविश्वास बढ़ाया। मेरे पति केंद्रीय विद्यालय में ही गणित के शिक्षक हैं।

इसके अलावा यह प्रश्न भी कहीं मेरे मन में घुमड़ रहा था कि इन बच्चियों की सहायता और कौन करने वाला है? इसे आप मेरा घमंड ना समझें, यह वास्तविकता है कि हमारे विद्यालयों में अच्छे से पढ़ने वाले बच्चों की सहायता करने वाले तो ढेरों मिल जाएँगे, लेकिन पिछड़ने वालों के लिए रुक के चलने वाले ना के बराबर।

ठोस वस्तुओं से जोड़ना-घटाना

अब बारी थी जोड़ सिखाने की। ऐसा नहीं कि मुझे कोई जल्दी थी, बल्कि उन सबको गिनती सीखने की बड़ी तीव्र इच्छा थी। सो मैंने अंक सिखाने के साथ ही छोटे-छोटे जोड़ सिखाने भी शुरू कर दिए। हर एक लड़की स्लेट नहीं ला सकती थी और वे जितनी गलतियाँ करतीं, उस हिसाब से उनके माता-पिता उन्हें कॉपियाँ लाकर न देते इसलिए हम बोर्ड पर ही सवाल करने लगे। इससे लाभ ही हुआ। उनकी नज़र में ये बहुत बड़ा विशेषाधिकार था क्योंकि अपनी कक्षा में तो वे पिछड़ी हुई बालिकाएँ थीं जिनके बोर्ड पर जाकर लिखने की बारी शायद ही कभी आ पाती।

मैंने नेहा से कहा कि वह अपनी पुस्तक सामने रखे, फिर काजल की रखवाई और पूछा, "अब यहाँ कितनी किताबें हो गईं?"

उन्होंने जवाब दिया, "दो।"

"तो एक किताब और एक किताब कितनी हुई?"

उन्होंने दोबारा कहा, "दो किताबें।"

फिर मैंने कहा, "शाबाश!"

"अब अगर हम इसमें पिंकी की भी एक किताब मिला दें तो कितनी हो जाएँगी?"

"तीन!"

अब मैंने एक-एक कर तीन लड़कियों को खड़ा करके अभ्यास दोहराया। फिर मैं गिनती को दस तक ले गई। साथ में कहती जाती कि एक लड़की, दो लड़कियाँ, तीन लड़कियाँ..... दस लड़कियाँ। एक-एक जोड़कर अगली गिनती पर आने का पुनः अभ्यास करवाने के लिए एक-एक कर सबकी कलमें एक सीध में रखते हुए गिनवाया और हर बार कहती जाती कि-एक और एक, दो।

दो और एक, तीन।

तीन और एक, चार..... और इसी प्रकार 10 तक।

इसके साथ ही मैंने एक और काम किया कि बोर्ड पर 1 से 10 तक की गिनती एक के नीचे एक लिखी। फिर उसके आगे यूँ लिखा:

1 = 1
1 + 1 = 2
2 + 1 = 3
3 + 1 = 4
4 + 1 = 5
5 + 1 = 6
6 + 1 = 7
7 + 1 = 8
8 + 1 = 9
9 + 1 = 10

इसके साथ ही मैं इन संख्याओं को बोलती भी जाती जिससे कि वे इस पूरी प्रक्रिया को समझ सकें।

अगले दिन मैं हिंदी में लिखी संख्याओं का चार्ट अपने साथ ले गई और जाते ही उसे बोर्ड

के ऊपर टाँग दिया। लक्ष्मी और नेहा को हिंदी पढ़नी आती थी, अत: उनसे मैंने अंक पढ़वाए और बैठी हुई लड़कियों से कहा कि वे अपने सामने रखे कंकड़ों को गिनते हुए दाईं ओर से बाईं ओर करती जाएँ।

इकाई, दहाई, सैकड़ा सिखाना भी कोई कम चुनौतीपूर्ण काम न होगा, इसका अंदाज़ा मुझे था। उसके लिए मैंने बहुत सोच-समझकर एक योजना बनाई। इनका 1 से 4 तक का पाठ्यक्रम मेरे दिमाग में था ही। 1 लिखने के लिए मैंने उन्हें गिनती 1 से आरंभ न करवा कर 0 से आरंभ करवाई। जब हम 10 पर आते हैं तो अधिकतर लोगों को मैंने 9 के नीचे 10 यूँ लिखते देखा है:

9
10

मुझे तो यही उचित लगा कि पहले उन सबको 0 की संकल्पना दूँ। इसके लिए मैंने उनका पूर्वज्ञान टटोला:

"शून्य का क्या मतलब होता है?"

"ज़ीरो! गोला! शून्य।"

"अच्छा, मेरे पास 12 पेंसिलें थीं और मैंने तुम सबको एक-एक दे दीं तो मेरे पास कितनी बचीं?"

"एक भी नहीं।"

"इस बात को अंकों में लिखना हो तो हम किस तरह लिखेंगे?"

वे चुप हो गईं। मैंने पुन: बोर्ड पर 1 से 10 तक के अंक एक के नीचे एक लिखे-

0
1
2
3
4
5
6
7
8
9
10

और उनसे पूछा कि "बताओ, इन में से हम कौन-सा अंक लिखेंगे जिससे पता चलेगा कि मेरे पास एक भी पेंसिल नहीं बची?"

अब वे सबकी सब तपाक् से बोलीं कि "0"

"हाँ, जब कुछ भी नहीं बचता तो हम 0 से उसे दर्शाते हैं।"

इकाई, दहाई और....

इस बात को मैंने विभिन्न उदाहरणों से उन्हें समझाया। और इसी क्रम में उन्हें एक कठिन लगने वाली बात भी समझाने की कोशिश की।

- हम सब गोले में बैठ गए। 100 कार्ड और 100 कंकड़ अपने बीच में रख लिए। मेरे पास कुछ और कंकड़ भी थे जो मैंने बाहर निकाल के रख लिए। नेहा से कहा कि वह बोर्ड पर एक सौ एक लिखे।
- अंजलि से कहा कि वह इकाई, दहाई, सैकड़ा के कार्ड अलग-अलग करके ज़मीन पर बिछा दे।
- अब हम सब नेहा को देखने लगे जो कि 100 लिखकर खड़ी हुई थी। मुझे उसकी ओर देखते देखकर वह बोली, "नहीं आ रहा।"
- "आओ, बैठो! हम देखें कि किस तरह लिखना है...."

- वे सब और पास आकर बैठ गईं। मैंने कहा कि चलो हम इन कार्डों से लिखने की कोशिश करें। 100 कंकड़ों का ढेर एक तरफ रखने के बाद मैंने एक कंकड़ उठाकर उस ढेर के पास रखा और पूछा, "अब कितने कंकड़ हुए?"
- 3-4 एक साथ बोलीं, "एक सौ और एक।"
- मैंने पूछा, "तो अब इसे अंकों में कैसे लिखेंगे?"
- वे मुझे देखते हुए बोलीं, "आप बताओ।"
- मैंने 100 का कार्ड रखके उसके इकाई के स्थान पर 1 का कार्ड रख दिया और उन सबको गौर करने का समय दिया। लक्ष्मी ने पूछा, "बीच में 0 क्यों आ गया है?"
- मैंने उसे याद दिलाया कि 0 से 9 तक इकाई के अंक होते हैं, फिर 10 से 99 तक दहाई के।

  और 100 से 999 तक सैकड़ा के। अब हमारे पास 100 हैं और है 1, दहाई की कोई संख्या अभी नहीं है इसलिए हम दहाई की जगह एक 0 रख रहे हैं।

उन्हें समझ नहीं आया। तब मैंने आगे बात बढ़ाई।

"देखो, मैं 11 और कंकड़ इस ढेर में मिलाती हूँ तो एक सौ एक में कुल कितने मिल जाएँगे, गिनकर बताओ।" वे गिनने लगीं और कुछ ही पलों में सही उत्तर दे दिया कि 112!

मैंने कार्डों की ओर इशारा करके कहा कि "इनसे 12 बनाओ और 100 के कार्ड पर रखो।" एक-दूसरे से सलाह मशविरा करते हुए उन्होंने ठीक से 112 बना दिया। तब मैंने उनको समझाया कि "अब इकाई में 2, दहाई में 1 और सैकड़े में भी 1 आया न?"

इस तरह से हमें लगभग पाँच दिन तक अभ्यास करना पड़ा, मगर अंततः उन सबको इकाई, दहाई व सैकड़े का खेल समझ में आ गया।

अब बारी थी पहाड़े सिखाने की!

मुझे घोर अचरज हुआ था कि उन सभी को 10 या 12 तक के पहाड़े याद थे, लेकिन जब मैंने जानना चाहा कि पहाड़ा क्या होता है तो वे बोलीं, ''दो एका दो। दो दूना चार! दो तीया छो, ये होता है पहाड़ा!'' और हँसने लगीं।

फिर से कंकड़ों की सहायता लेते हुए मैंने पहाड़ा क्या होता है, यह समझाया।

2-2 के 10 जोड़े रखकर उन्हें गिनने को कहा। उत्तर तो 20 ही आना था।

फिर मैंने सुमित्रा से 2 का पहाड़ा सुनाने को कहा। वह बोलती जाती और मैं 2-2 करके एक तरफ लगाती जाती। वे उत्सुकता से देखती जा रही थीं। जब वह 'दो दहा में बीस' पर पहुँची तो मैंने 2-2 कंकड़ हटाके दूसरी ओर रखते हुए पूरा पहाड़ा फिर से बोला और कहा, ''कुछ समझ में आया?'' तो वे मुझे देखती रहीं पर कुछ बोलीं नहीं।

मैंने ही समझाया कि एक ही संख्या को बार-बार जोड़ने को ही पहाड़ा कहते हैं। इस बात को सिद्ध करने के लिए मैंने उन्हें 3-3 के समूह में बाँटा और प्रत्येक को 2, 3, 4 और 5 कंकड़ों के 10-10 समूह बनाकर फर्श पर रखने के लिए कहा। फिर पहले समूह को दूसरों से जोड़कर उसका योग वहीं फर्श पर

चॉक से लिखते जाने को कहा। कुछ देर में ही उनके पास 4 पहाड़े तैयार थे!

गुणा और बराबर के चिन्हों का मतलब समझाते हुए फिर बड़ी ही सरलता से उन्हें पहाड़े लिखना सिखाना चुटकियों में हो गया।

उसके आगे के पहाड़े लिखने के लिए उनकी ही तरफ से एक सुझाव आया कि "अब हम कॉपी में लकीरें खींचकर पहाड़े लिख लेंगे।"

और मुझे लगा कि "अंत भला तो सब भला!"

इसके बाद, उनके अनुभवों से जुड़ी वस्तुओं के आधार पर मैंने अभ्यास के लिए कई सवाल दिए। जैसे-

1. एक बकरी के लिए एक किलो पत्तियाँ लगती हैं तो तीन बकरियों के लिए कितने किलो लगेंगी?
2. एक कमीज़ में लगाने के लिए चार बटन लगते हैं तो पाँच कमीज़ों के लिए कुल कितने बटन लगेंगे?
3. मैं एक लड़की को दो बिस्कुट देती हूँ तो नौ को कितने देने पड़ेंगे? आदि।

इस सारी प्रक्रिया को करते हुए मेरे मन में जो बातें बार-बार आ रही थीं उन्हें बताए बिना इस लेख को खत्म करना उचित न होगा। ये वे बातें हैं जो केंद्रीय विद्यालय में नौकरी करते समय भी मेरे मन में उठती रही हैं।

हम पढ़ाते समय कोई खतरा मोल लेना नहीं चाहते और ऐसा न करने के लिए हमारे पास एक-से-एक लाजवाब तर्क होते हैं, जैसे, हमें एक निश्चित समय में कोर्स पूरा करना होता है, हमें बेकार का पेपरवर्क बहुत करना होता है, कमज़ोर बच्चों को पढ़ा ही देंगे तो कौन-सा राष्ट्रपति पुरस्कार मिलने वाला है आदि, आदि।

अगर कोई शिक्षक या शिक्षिका लीक से हटकर कुछ करते भी हैं तो उन्हें अनेक प्रकार की आलोचनाओं का शिकार होने के साथ ही ज़बरदस्ती पैदा की गई अनेक अरुचिकर परिस्थितियों से जूझना पड़ता है। वो जो अतिरिक्त समय ऐसे हितकारी काम के लिए लगाते हैं उसे अक्सर कहीं किसी अर्थहीन काम में खराब करवा दिया जाता है, खासतौर से ऐसे कामों में जिन्हें कोई भी अन्य शिक्षक/शिक्षिका कर सकता/सकती है, या फिर स्टाफ रूम में सहकर्मियों की फब्तियों का शिकार होना पड़ता है। सामान्यत: किसी भी शिक्षक या शिक्षिका का कार्य उसके सहकर्मियों की मदद, प्रोत्साहन या आलोचना से बहुत हद तक तय और प्रभावित होता है।

❑❑❑

शोध

12

कक्षा आठ के विद्यार्थियों में संस्कृत भाषा प्रवीणता के विकास हेतु बहुमाध्यमीय अनुदेशन अभिक्रम की प्रभावकारिता का अध्ययन

रमेश कुमार*

भाषा शिक्षण के लिए अनेक विधियों का प्रयोग किया जाता है। उनमें से कुछ पुरातन हैं जैसे पारंपरिक पाठ्यपुस्तक-विधि, व्याकरण, अनुवाद आदि। संस्कृत शिक्षण हेतु विद्यालयों में इन्हीं पुरातन विधियों का प्रयोग बहुतायत रूप में किया जाता है। उक्त बात को ध्यान में रखते हुए शोधकर्ता ने आधुनिक भाषा शिक्षण में प्रयुक्त नवीन विधियों में से एक बहुमाध्यमीय अनुदेशन प्रणाली का इस्तेमाल संस्कृत शिक्षण हेतु किया तथा शोध के माध्यम से इसकी प्रभावकारिता की जाँच की। शोधकर्ता ने शोध की संपूर्ण विवरणिका को उक्त आलेख के माध्यम से सूचीबद्ध किया है।

भूमिका

संस्कृत विश्व की सबसे प्राचीन एवं वैज्ञानिक भाषा है। इसका साहित्य विशाल, विस्तृत एवं समृद्ध है। भाषा वैज्ञानिकों के अनुसार यह भारतीय संस्कृति और सभ्यता की आधारशिला है, अतः इसका सांस्कृतिक महत्त्व न केवल भारत की जनता के लिये अपितु समस्त संसार के लिये है। यह भारतवर्ष की अधिकतर भाषाओं की जननी है। इस संदर्भ में संस्कृत आयोग में लिखा है ''आधुनिक आर्य भाषाएँ संस्कृत से ही उत्पन्न हुई हैं और जहाँ तक द्रविड़ भाषाओं का संबंध है वे भी अपने साहित्यिक प्रयोग के आदिकाल से ही संस्कृत के द्वारा पालित-पोषित हैं'' संस्कृत आयोग (1956-57)।

अध्ययन की आवश्यकता

संस्कृत भाषा के भारतीय मानस में प्राप्त स्थान एवं महत्त्व की स्वीकृति ही है कि इसे अनिवार्य विषय के रूप में कक्षा आठ तक भारतीय विद्यालयों में पढ़ाया जाता है। लेकिन संस्कृत भाषा-शिक्षण में पुरातन पारंपरिक पाठ्यपुस्तक-विधि का ही सर्वाधिक उपयोग

* *असिस्टेंट प्रोफेसर,* राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविंद मार्ग, नयी दिल्ली- 110016

किया जाता है। परिणामस्वरूप संस्कृत भाषा प्रवीणता संबंधी चारों कौशलों (सुनना, बोलना, पढ़ना, लिखना) में संतुलित विकास नहीं हो पाता और छात्र संस्कृत के कुछ श्लोकों को तो रट लेते हैं परंतु उनमें अन्य अपेक्षित कौशलों का विकास नहीं हो पा रहा है। अत: इस बात की आवश्यकता है कि संस्कृत शिक्षण हेतु अन्य नवाचारिक विधियों की उपयोगिता सिद्ध की जाए और यदि वो उपयोगी हैं तो उन्हें अपनाया जाए। इसी उद्देश्य से प्रेरित होकर प्रस्तुत शोध में शोधकर्ता ने यह निर्णय लिया कि यदि संस्कृत भाषा का शिक्षण एवं संप्रेषण की आधुनिक तकनीकों एवं विधाओं का उचित उपयोग कर शिक्षण प्रदान किया जाय तो निश्चित रूप से संस्कृत भाषा की प्रवीणता छात्रों में विकसित होगी। निश्चय ही एक बहुमाध्यमीय अनुदेशन प्रणाली पारंपरिक-पाठ्यपुस्तक प्रणाली से भाषा प्रवीणता के विकास में श्रेष्ठ साबित होगी। प्रस्तुत शोधकार्य इसी शोध परिकल्पना की पुष्टि हेतु संपादित किया गया।

समस्या कथन

प्रस्तुत अध्ययन हेतु शोध शीर्षक औपचारिक रूप से इस प्रकार निरूपित किया गया :-

कक्षा आठ के विद्यार्थियों में संस्कृत भाषा प्रवीणता के विकास हेतु बहुमाध्यमीय अनुदेशन अभिक्रम की प्रभावकारिता का अध्ययन।"

अध्ययन के उद्देश्य

प्रस्तुत अध्ययन का प्रमुख उद्देश्य इस प्रकार निरूपित किया गया था :-

- कक्षा आठ के विद्यार्थियों में संस्कृत भाषा की प्रवीणता के विकास हेतु एक बहुमाध्यमीय अनुदेशन अभिक्रम का निर्माण कर उसकी प्रभावकारिता की जाँच करना।

उपरोक्त प्रमुख उद्देश्य की पूर्ति हेतु निम्न सहवर्ती (Concomitant) उद्देश्यों की प्राप्ति आवश्यक रूप से करनी पड़ी:-

- संस्कृत भाषा प्रवीणता (चारों पक्षों: सुनना, बोलना, पढ़ना एवं लिखना) के मापन हेतु चार कसौटी संदर्भित परीक्षणों का निर्माण एवं मानकीकरण।

परिकल्पना

इस अध्ययन की प्रमुख शोध परिकल्पना निम्नलिखित थी :-

निर्मित बहुमाध्यमीय अनुदेशन अभिक्रम पारंपरिक कक्षा अनुदेशन विधि की तुलना में कक्षा आठ के विद्यार्थियों में संस्कृत भाषा प्रवीणता के विकास में सार्थक रूप से अधिक प्रभावी होगा।''

अत:, कक्षा आठ के जिन छात्रों को निर्मित बहुमाध्यमीय अनुदेशन अभिक्रम के माध्यम से संस्कृत पढ़ाई जाएगी वे उन छात्रों की तुलना में जिनको पारंपरिक कक्षा अनुदेशन विधि से पढ़ाया जाएगा संस्कृत भाषा से संबंधित निम्नलिखित आयामों में सार्थक रूप से अधिक निपुण होंगे-

1. संस्कृत भाषा को सुनकर समझने में;
2. संस्कृत भाषा को बोलने में;
3. संस्कृत भाषा को पढ़ने में; और
4. संस्कृत भाषा को लिखने में।

उक्त शोध परिकल्पना को शोधकर्ता ने निम्नलिखित शून्य परिकल्पनाओं की सांख्यिकीय जाँच करके पुष्ट अथवा अपुष्ट किया।

''बहुमाध्यमीय अनुदेशन अभिक्रम एवं पारंपरिक कक्षा अनुदेशन विधि से शिक्षित कक्षा आठ के दोनों समूहों के विद्यार्थियों की संस्कृत भाषा प्रवीणता में कोई सार्थक अंतर नहीं होगा।" अतएव :

1. संस्कृत भाषा को सुनकर समझने की उपलब्धि में दोनों समूहों में कोई सार्थक अंतर नही होगा,
2. संस्कृत भाषा को बोलने की उपलब्धि में दोनों समूहों में कोई सार्थक अंतर नहीं होगा,
3. संस्कृत भाषा को पढ़ने की उपलब्धि में दोनों समूहों में कोई सार्थक अंतर नहीं होगा,
4. संस्कृत भाषा को लिखने की उपलब्धि में दोनों समूहों में कोई सार्थक अंतर नहीं होगा।

शोध अभिकल्पना

प्रयोग हेतु इस अध्ययन में 'द्वि-समूह प्रीटेस्ट, पोस्ट टेस्ट नियंत्रित समूह डिज़ाइन' (Two Group Pre-test, Post-test Control Group Design) का प्रयोग किया गया है।

प्रयोग परिस्थिति (Experimental Setting)— इस अध्ययन का प्रमुख उद्देश्य संस्कृत शिक्षण हेतु निर्मित बहुमाध्यमीय अनुदेशन अभिक्रम की प्रभावकारिता ही सिद्ध करना था, अतः जनसंख्या अथवा उसका प्रतिनिधित्व उतना महत्वपूर्ण नहीं था जितना कि प्रयोग की परिस्थिति (Experimental Setting) एवं प्रयोग का संचालन (Conduction of the experiment)। आदर्श प्रयोग की परिस्थिति निर्माण करने हेतु Randomization एक अनिवार्य शर्त है। परंतु व्यवहार में ऐसा कर पाना, यदि असंभव नहीं तो, बहुत कठिन होता है। अतः वर्तमान शोध का प्रयोग करने हेतु, शोधकर्ता का प्रमुख लक्ष्य एक ऐसे विद्यालय का चयन था जिसमें कक्षा आठ में अनिवार्य संस्कृत शिक्षण होता हो और वो विद्यालय शोध कर्ता को प्रयोग हेतु कक्षा आठ के समस्त छात्रों का Randomization कर प्रयोगात्मक एवं नियंत्रित समूह बनाकर प्रयोग हेतु अनुमति दे।

ऐसा विद्यालय पाने हेतु शोधकर्ता ने कई विद्यालयों के प्रधानाचार्यों से संपर्क किया। अंत में नवज्योति स्कूल, वाराणसी के प्रधानाचार्य ने अपने विद्यालय में शोधकर्ता को प्रयोग की अनुमति प्रदान कर दी। इस प्रकार इस विद्यालय के कक्षा आठ के साठ (60) विद्यार्थियों को Randomly दो के बराबर समूहों में बाँटकर इस अध्ययन हेतु प्रयोग किया गया।

अध्ययन में प्रयुक्त उपकरण

संस्कृत भाषा पर आधारित बहुमाध्यमीय अनुदेशन अभिक्रम, जिसे विवेचन (treatment) के रूप में प्रयोग किया गया के अतिरिक्त, इस शोध में संस्कृत भाषा के चारों पक्षों (सुनना, बोलना, पढ़ना एवं लिखना) में प्रवीणता की जाँच हेतु चार कसौटी संदर्भित परीक्षणों का निर्माण किया गया। ये शोध उपकरण निम्नलिखित हैं:-

1. कक्षा आठ हेतु संस्कृत भाषा के चारों पक्षों (श्रवण, वाचन, पठन, लेखन) पर आधारित कसौटी परीक्षण।
2. संस्कृत भाषा पर आधारित बहुमाध्यमीय अनुदेशन - विवेचना (Treatment) अभिक्रम।

परीक्षण की विश्वसनीयता एवं वैधता

परीक्षण की विश्वसनीयता ज्ञात करने हेतु चारों कौशलों से संबंधित परीक्षणों पर परीक्षण पुन:परीक्षण विधि द्वारा कालिक संगति ज्ञात की गई जो निम्नलिखित है:-

श्रवण-कौशल परीक्षण-.65, वाचन-कौशल परीक्षण-.87, पठन-कौशल परीक्षण-.85, लेखन-कौशल परीक्षण-.78।

उपर्युक्त चारों परीक्षणों की विषयगत वैधता संबंधित विशेषज्ञों के परामर्श एवं समालोचना द्वारा निर्धारित की गई।

आँकड़ों के संग्रह की प्रक्रिया

चयनित विद्यालय के कक्षा आठ के विद्यार्थियों को यादृच्छिक रूप से दो समूहों में बाँटकर उनमें से एक समूह को प्रायोगिक समूह तथा दूसरे को नियंत्रित समूह के रूप में चिन्हित किया गया। दोनों समूहों को प्रयोग पूर्व संस्कृत भाषा के चारों कौशलों पर आधारित परीक्षण दिए गए तदनंतर 15 दिनों तक विवेचना (Treatment) देने के उपरांत पुन: परीक्षणों को दुहराया गया। शोधकर्ता द्वारा परीक्षण से प्राप्त प्राप्तांकों को आँकड़ों के रूप में संग्रहीत किया गया।

आँकड़ों का विश्लेषण

आँकड़ों के विश्लेषण के लिए शोधकर्ता ने दोनों समूहों द्वारा प्राप्त प्राप्तांकों के आधार पर दण्ड-आरेख, मानक-विचलन, मध्यमान, टी-परीक्षण की गणना की, जो कि अध्ययन के उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायक सिद्ध हुई।

परिणाम

उक्त अध्ययन में संस्कृत भाषा प्रवीणता से संबंधित चारों कौशलों (सुनना, बोलना, पढ़ना, लिखना) पर निर्मित कसौटी संदर्भित परीक्षणों के पूर्व एवं पश्चात् परीक्षणोपरांत प्राप्त आँकड़ों पर टी-परीक्षण के फलस्वरूप निम्नलिखित शोध परिणाम प्राप्त हुए-

(एच.0.1) संस्कृत भाषा को सुनकर समझने की उपलब्धि में दोनों समूहों में कोई अंतर नहीं होगा।

उक्त शून्य परिकल्पना की सांख्यिकीय जाँच करने के लिए सर्वप्रथम दोनों (नियंत्रित एवं प्रयोगात्मक) समूहों के छात्रों के श्रवण कौशल का पूर्व परीक्षण किया गया। इस परीक्षण का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना था कि विवेचन (treatment) देने से पहले दोनों समूहों के श्रवण कौशल में सार्थक अंतर न हो। परिणामत: t-value जो प्राप्त हुआ वह 1.082 था जो कि .05 सार्थकता स्तर पर सार्थक नहीं था। अत: स्पष्ट है कि नियंत्रित एवं प्रयोगात्मक समूहों में श्रवण कौशल के आधार पर पूर्व परीक्षण के दौरान कोई सार्थक अंतर नहीं था। दोनों समूह विवेचन (treatment) के पूर्व श्रवण कौशल पर लगभग समान थे।

श्रवण कौशल के विकास में बहु-माध्यमीय अनुदेशन प्रणाली के प्रभाव की जाँच हेतु इस अध्ययन में चयनित प्रयोग योजनानुसार विवेचन (treatment) के उपरांत संचालित किया गया। दोनों समूहों के श्रवण कौशल को पुन: मापा गया और 'टी' का मान ज्ञात किया गया। परिणामत: t-value जो प्राप्त हुआ वह 2.272 था जो कि .05 सार्थकता स्तर पर सार्थक था। अत: प्रथम शून्य परिकल्पना "संस्कृत भाषा को सुनकर समझने की उपलब्धि में दोनों समूहों में कोई

सार्थक अंतर नहीं होगा" अस्वीकृत होती है। इस परिणाम के आधार पर परिकल्पना कि "निर्मित बहुमाध्यमीय अनुदेशन अभिक्रम पारंपरिक कक्षा अनुदेशन विधि की तुलना में संस्कृत भाषा को सुनकर समझने में सार्थक रूप से अधिक प्रभावकारी है" स्वीकृत होती है।

(एच.0.2) संस्कृत भाषा को बोलने की उपलब्धि में दोनों समूहों में कोई सार्थक अंतर नहीं होगा।

उक्त शून्य परिकल्पना की सांख्यिकीय जाँच करने के लिए सर्वप्रथम दोनों समूहों की वाचन कौशल पर पूर्व परीक्षण स्थिति में कोई सार्थक अंतर तो नहीं था, की जाँच की गई। इसके फलस्वरूप जो आँकड़े t-value पर प्राप्त हुए वह .327 था जो कि .05 सार्थकता स्तर पर सार्थक नहीं था। प्राप्त आँकड़ों से स्पष्ट है कि नियंत्रित एंव प्रयोगात्मक समूहों में वाचन कौशल के आधार पर पूर्व परीक्षण के दौरान कोई सार्थक अंतर नहीं है। दोनों समूह विवेचन (treatment) के पूर्व वाचन कौशल पर लगभग समान थे।

वाचन कौशल पर विवेचन (treatment) का क्या प्रभाव पड़ता है की जाँच हेतु प्रयोग उपरांत वाचन कौशल का पुन: माप लिया गया और दोनों समूहों की टी-परीक्षण द्वारा तुलना की गई। परिणामत: t-value जो प्राप्त हुआ वह 2.376 था जो कि .05 सार्थकता स्तर पर सार्थक था। स्पष्ट है कि प्राप्त t-value .05 सार्थकता स्तर पर सार्थक है। अत: द्वितीय शून्य परिकल्पना "संस्कृत भाषा को बोलने की उपलब्धि में दोनों समूहों में कोई सार्थक अंतर नहीं होगा" अस्वीकृत होती है और परिणाम दिखाते हैं कि प्रयोगात्मक समूह की इस कौशल पर उपलब्धि नियंत्रित समूह से सार्थक रूप में अधिक है। अत: वैकल्पिक कि "निर्मित बहुमाध्यमीय अनुदेशन अभिक्रम पारंपरिक कक्षा अनुदेशन विधि की तुलना में संस्कृत भाषा को बोलने की उपलब्धि बढ़ाने में सार्थक रूप से अधिक प्रभावकारी है" स्वीकृत होती है।

(एच.0.3) संस्कृत भाषा को पढ़ने की उपलब्धि में दोनों समूहों में कोई अंतर नहीं होगा।

उक्त शून्य परिकल्पना की सांख्यिकीय जाँच करने के लिए सर्वप्रथम दोनों समूहों की पठन कौशल पर पूर्व परीक्षण स्थिति में कोई सार्थक अंतर तो नहीं था कि जाँच की गई। इसके फलस्वरूप जो t-value 0.39 प्राप्त हुए जो कि .05 सार्थकता स्तर पर सार्थक नहीं हैं। स्पष्ट है कि नियंत्रित एवं प्रयोगात्मक समूहों में पठन कौशल के आधार पर पूर्व परीक्षण के दौरान कोई सार्थक अंतर नहीं था। दोनों समूह विवेचन (treatment) के पूर्व पठन कौशल पर लगभग समान थे।

पठन कौशल पर विवेचन (treatment) का क्या प्रभाव पड़ता है, की जाँच हेतु प्रयोग उपरांत पठन कौशल का पुन: माप लिया गया और दोनों समूहों की टी-परीक्षण द्वारा तुलना की गई। t-value 2.19 प्राप्त हुआ जो कि .05 सार्थकता स्तर पर सार्थक है। स्पष्ट है कि प्राप्त t-value .05 स्तर पर सार्थक है। अत: तृतीय शून्य परिकल्पना "संस्कृत भाषा को पढ़ने की उपलब्धि में दोनों समूहों में कोई सार्थक अंतर नहीं होगा", अस्वीकृत होती है और परिणाम दिखाते हैं कि प्रयोगात्मक समूह की इस

कौशल पर उपलब्धि नियंत्रित समूह से सार्थक रूप से अधिक है। अत: वैकल्पिक परिकल्पना कि "निर्मित बहुमाध्यमीय अनुदेशन अभिक्रम पारंपरिक कक्षा अनुदेशन विधि की तुलना में संस्कृत भाषा को पढ़ने की उपलब्धि बढ़ाने में सार्थक रूप से अधिक प्रभावकारी है", स्वीकृत होती है।

(एच.0.4) संस्कृत भाषा को लिखने की उपलब्धि में दोनों समूहों में कोई अंतर नहीं होगा।

उक्त शून्य परिकल्पना की सांख्यिकीय जाँच करने के लिए सर्वप्रथम दोनों समूहों के लेखन कौशल पर पूर्व परीक्षण स्थिति में कोई सार्थक अंतर तो नहीं था की जाँच की गई। इसके फलस्वरूप जो t-value 0.240 प्राप्त हुए जो कि .05 सार्थकता स्तर पर सार्थक नहीं हैं। स्पष्ट है कि नियंत्रित एवं प्रयोगात्मक समूहों में लेखन कौशल के आधार पर पूर्व परीक्षण के दौरान कोई सार्थक अंतर नहीं है। दोनों समूह विवेचन (treatment) के पूर्व लेखन कौशल पर लगभग समान थे।

लेखन कौशल पर विवेचन (treatment) का क्या प्रभाव पड़ता है, की जाँच हेतु प्रयोग उपरांत लेखन कौशल का पुन: माप लिया गया और दोनों समूहों की टी-परीक्षण द्वारा तुलना की गई। t-value 2.27 प्राप्त हुआ जो कि .05 सार्थकता स्तर पर सार्थक है। स्पष्ट है कि प्राप्त t-value .05 सार्थकता स्तर पर सार्थक है। अत: चतुर्थ शून्य परिकल्पना "संस्कृत भाषा को लिखने की उपलब्धि में दोनों समूहों में कोई सार्थक अंतर नहीं होगा" अस्वीकृत होती है और जो परिणाम दिखाते हैं कि प्रयोगात्मक समूह की इस कौशल पर उपलब्धि नियंत्रित समूह से सार्थक रूप से अधिक है। अत: वैकल्पिक परिकल्पना कि "निर्मित बहुमाध्यमीय अनुदेशन अभिक्रम पारंपरिक कक्षा अनुदेशन विधि की तुलना में संस्कृत भाषा को लिखने की उपलब्धि बढ़ाने में सार्थक रूप से अधिक प्रभावकारी है" स्वीकृत होती है।

निष्कर्ष एवं समीक्षा (Discussion)

उपरोक्त प्रमुख परिणाम एवं शोध में उपलब्ध अन्य आँकड़ों के आधार पर निचले निष्कर्षों की विवेचना यहाँ निष्कर्ष शीर्षक के अंतर्गत की गई है–

1. ''संस्कृत भाषा प्रवीणता की दृष्टि से देखा जाए तो कक्षा आठ के विद्यार्थियों की सबसे बड़ी कमज़ोरी मौखिक कौशल है और निर्मित बहुमाध्यमीय अनुदेश अभिक्रम इस कमज़ोरी को दूर करने में परंपरागत शिक्षण विधि की तुलना में, सार्थक रूप से अधिक प्रभावकारी है।"

इस निष्कर्ष पर पहुँचना इसलिए संभव हुआ क्योंकि कक्षा आठ के विद्यार्थियों में मौखिक कौशल प्रवीणता की जाँच हेतु जिस कसौटी संदर्भित परीक्षण को प्रशासित किया गया उस पर उन्होंने सबसे निम्न अंक प्राप्त किए। सामान्यत: ऐसा देखने में भी आता है कि बच्चे प्राय: संस्कृत नही बोल पाते। इससे स्पष्ट है कि परंपरागत शिक्षण प्रणाली के अंतर्गत Model reading करके छात्रों से पढ़वाते है और हिंदी में अनुवाद कर आगे बढ़ जाते हैं। छात्रों को न तो अधिक संस्कृत सुनने को मिलती है और

न ही अधिक बोलने के अवसर ही कक्षा में प्रदान किए जाते हैं।

इसकी तुलना में जो बहुमाध्यमीय अनुदेशन प्रणाली इस शोध में प्रयुक्त की गई उसमें छात्रों को एक तो संस्कृत भाषा अधिक सुनने के अवसर मिले और साथ ही साथ संस्कृत बोलकर अधिक अंत:क्रिया भी करायी गई और इसी का परिणाम यह हुआ कि प्रायोगिक समूह के छात्रों के मौखिक कौशल में सार्थक रूप से अधिक धनात्मक परिवर्तन हुआ।

2. संस्कृत भाषा शिक्षण से संबंधित चारों आयामों में दूसरा सबसे उपेक्षित कौशल श्रवण कौशल है। "निर्मित बहुमाध्यमीय अनुदेशन अभिक्रम श्रवण कौशल के विकास में भी सार्थक रूप से अधिक प्रभावकारी है।"

श्रवण कौशल परीक्षण पर छात्रों ने वाचन कौशल के बाद सबसे कम अंक प्राप्त किए। इसका सीधा अर्थ है कि परंपरागत शिक्षण विधि में छात्रों को पर्याप्त अवसर उपलब्ध नहीं कराया जाता है। अत: छात्र संस्कृत भाषा संबंधी सुनकर अर्थग्रहण करने संबंधी योग्यता का विकास नहीं कर पाते हैं। संस्कृत भाषा में उच्चारण की शुद्धता पर विशेष बल दिया जाता है परंतु उन्हें सुनने के पर्याप्त अवसर नहीं दिए जाते अत: छात्रों की उक्त कौशल संबंधी योग्यता का विकास नहीं हो पाता है।

दूसरी और बहुमाध्यमीय अनुदेशन अभिक्रम प्रणाली में छात्रों को टेपरिकॉर्डर, डिक्टाफोन कंप्यूटर के द्वारा ज़्यादा से ज़्यादा गद्य एवं पद्य पाठों को सुनने के अवसर प्रदान किए गए इसी का परिणाम हुआ कि प्रायोगिक समूह के छात्रों में श्रवण कौशल में सार्थक रूप से अधिक धनात्मक परिवर्तन परिलक्षित हुआ।

3. परंपरागत भाषा शिक्षण विधि में मुख्यत: विधि में छात्रों ने अन्य कौशलों से अधिक अंक प्राप्त किए। निर्मित बहुमाध्यमीय अनुदेशन अभिक्रम में भी छात्रों को ज़्यादा पठन कौशल योग्यता के विकास हेतु अवसर उपलब्ध कराए गए।

अत: परिणाम के आधार पर हम निष्कर्षत: कह सकते है कि ''निर्मित बहुमाध्यमीय अनुदेशन अभिक्रम पठन कौशल को बढ़ाने में परंपरागत शिक्षण विधि की तुलना में सार्थक रूप से अधिक प्रभावकारी है।''

4. ''परंपरागत शिक्षण विधि में विषयों को स्मरण करवाने पर ज़्यादा ज़ोर दिया जाता है। अत: लेखन कौशल अपेक्षाकृत पिछड़ जाता है परंतु निर्मित बहुमाध्यमीय अनुदेशन अभिक्रम लेखन कौशल के विकास में परंपरागत शिक्षण विधि की तुलना में सार्थक रूप से अधिक प्रभावकारी है।''

वस्तुत: संस्कृत अध्ययनरत् छात्रों के साथ ऐसा देखा जाता है कि शिक्षक विषय सामग्री स्मरण करने पर ज़्यादा ज़ोर देते हैं। छात्रों को लेखन कौशल के विस्तार हेतु पर्याप्त अवसर नहीं उपलब्ध कराए जाते। जबकि निर्मित बहुमाध्यमीय अनुदेशन अभिक्रम के द्वारा छात्रों को शुद्ध संस्कृत की स्क्रिप्ट स्क्रीन पर लगातार दिखाई गई तथा उनका उच्चारण भी बैकग्राउंड साउंड के माध्यम से लगातार अंतराल पर आता रहता था। छात्रों को लगातार छोटे-छोटे वाक्यों के

लिखित रूप भी दिखाए गए और उसे उच्चरित कर सुनाया भी गया। लेखन कौशल के विकास हेतु उन्हें पर्याप्त सामग्री उपलब्ध करायी गई। परिणामस्वरूप उक्त कौशल में भी इस कार्यक्रम के फलस्वरूप छात्रों में सकारात्मक परिवर्तन दिखाई दिया। अत: प्राप्त परिणामों के आधार पर निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि "निर्मित बहुमाध्यमीय अनुदेशन अभिक्रम लेखन कौशल को भी सुदृढ़ करने में परंपरागत शिक्षण विधि की तुलना में अधिक प्रभावकारी है।''

अध्ययन के शैक्षिक निहितार्थ

1. भाषा शिक्षक भाषा-प्रवीणता के चारों आयामों (सुनना, बोलना, पढ़ना, लिखना) को ध्यान में रखकर अपनी शैक्षिक योजना तैयार कर सकेंगे।
2. छात्रों की भाषा-संबंधी प्रगति का आकलन करते हुए लगातार भाषायी अभिलेख (language graph) के माध्यम से उनके प्रगति का मूल्यांकन किया जाना संभव हो सकेगा।
3. संस्कृत भाषा में अंग्रेजी भाषा-शिक्षण के समान ही विभिन्न विषयों का प्रस्तुतीकरण बहुमाध्यमीय अनुदेशन अभिक्रम पर आधारित कार्यक्रमों के माध्यम से किया जा सकेगा।
4. संस्कृत में उच्चारण की शुद्धता का बड़ा ही महत्त्व है। भाषा शिक्षण में प्रयुक्त आधुनिक उपकरण यथा- टेपरिकॉर्डर, डिक्टाफोन आदि के माध्यम से छात्रों की उच्चारण शुद्धता का शिक्षकों द्वारा ध्यान रखा जा सकता है।
5. विभिन्न भाषाओं में विकसित SOPI-test जो कि वाचन कौशन की प्रवीणता के मूल्यांकन हेतु इस्तेमाल किया जाता है। इसे शोधकर्ता द्वारा संस्कृत में कक्षा आठ के छात्रों के वाचन कौशल प्रवीणता के मूल्यांकन हेतु विकसित किया गया। संस्कृत के शिक्षक इसी प्रकार का परीक्षण विभिन्न कक्षाओं के लिए भी विकसित कर सकते हैं जो कि भाषा के विभिन्न कौशलों पर आधारित होगा।
6. भाषा शिक्षक विभिन्न भाषाओं के लिए भाषा प्रवीणता दिशा-निर्देश (language proficiency guideline) तैयार कर सकते हैं जो कि विभिन्न कौशलों में छात्रों की वर्तमान स्थिति को निर्धारित करने में सहायक होगा।

अध्ययन की सीमाएँ

प्रत्येक अनुसंधान कार्य की अपनी कुछ सीमाएँ होती है। अनेकानेक कठिनाईयों, समयाभाव, सीमित आर्थिक उपबंध, साधनों की अनुपलब्धता जैसी सीमाओं ने शोधकर्ता की महत्वकांक्षा को परिसीमित कर दिया। इन कठिनाइयों के बावजूद शोधकर्ता ने इस बात का पूरा ध्यान रखा कि शोध की वस्तुपरकता व वैज्ञानिकता को किसी प्रकार की कोई क्षति न पहुँचे। सारे प्रयासों के बावजूद इस शोध के परिणामों की व्याख्या निम्नलिखित सीमाओं को ध्यान में रखकर करनी चाहिए–

1. बहुमाध्यमीय उपागम: वास्तव में इसके अंतर्गत बहुत सारे उपागमों को सन्निविष्ट किया जा सकता था परंतु शोधकर्ता ने

अपने शोध कार्य हेतु विभिन्न बहुमाध्यमीय उपागमों में से कुछ जैसे टेपरिकॉर्डर, स्थिर श्वेत श्याम एवं रंगीन चित्र, स्लाइड आदि का उपयोग उपरोक्त अध्ययन हेतु कार्यक्रम के निर्माण में बहुतायत से किया।

2. कक्षा आठ के लिए विकसित पाठ्यपुस्तक श्रेयसी, भाग-3 के सभी पाठों पर बहुमाध्यमीय अनुदेशन अभिक्रम पर आधारित कार्यक्रम का निर्माण काफी खर्चीला एवं समय साध्य था। अतः शोध कर्ता ने श्रेयसी भाग-3 के प्रथम पाँच पाठों पर आधारित कार्यक्रम का ही निर्माण किया।
3. चूंकि केंद्रीय विद्यालय संगठन द्वारा संचालित विद्यालयों में अनिवार्य रूप से संस्कृत पढ़ने की अंतिम कक्षा आठ है, अतः उक्त अध्ययन को वस्तुतः केंद्रीय विद्यालय तक सीमित करके इसी विद्यालय के कक्षा आठ के विद्यार्थियों को ही न्यायदर्श हेतु अध्ययन के लिये चयनित किया गया।
4. प्रारंभ में शोधकर्ता ने श्रेयसी भाग-3 के प्रथम पाँच पाठों के ऊपर गतिशील चित्रों (motion pictures) के माध्यम से बहुमाध्यमीय अनुदेशन अभिक्रम पर आधारित कार्यक्रम निर्माण करने का विचार बनाया था। लेकिन व्यावहारिक कठिनाईयों के कारण ऐसा संभव नहीं हो सका।

संदर्भ-ग्रंथ

अग्रवाल, जे.सी. (1994) *राष्ट्रीय शिक्षा नीति*, प्रभात प्रकाशन, नयी दिल्ली।

उपाध्याय, दुर्गावती (1991), *विगत (उन्नीसवीं) शताब्दी में संस्कृत शिक्षा की स्थिति*, सम्पूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालयीय मुद्रणालय, वाराणसी।

सफाया, रघुनाथ (1990), *संस्कृत शिक्षण*, साहित्य अकादमी, चंडीगढ़।

शास्त्री, डा. मंगलदेव (1964), *संस्कृत साहित्य का इतिहास*, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली।

बालमन कुछ कहता है

PAGE NO.
DATE

मेरी स्कुल पिकनिक

हमारा स्कुल हमे हर साल पिकनिक पर ले जाता है इस साल हमे फन टाऊन ले गए थें। मेरे सभी दोस्त भी गए थे हम सब स्कुल बस में गए थें हमारे साथ हमारी क्लास टीचर भी गई थी हमने वहा बहुत मस्ती की और झूलें भी झूलें और स्वीमीग भी की। शाम को अपने घर आ गए यह दिन मुझे हमेशा याद रहेगा।

करन भारद्वाज
ऋषिकुल विद्यापीत स्कुल
कक्षा - 7

बालमन कुछ कहता है

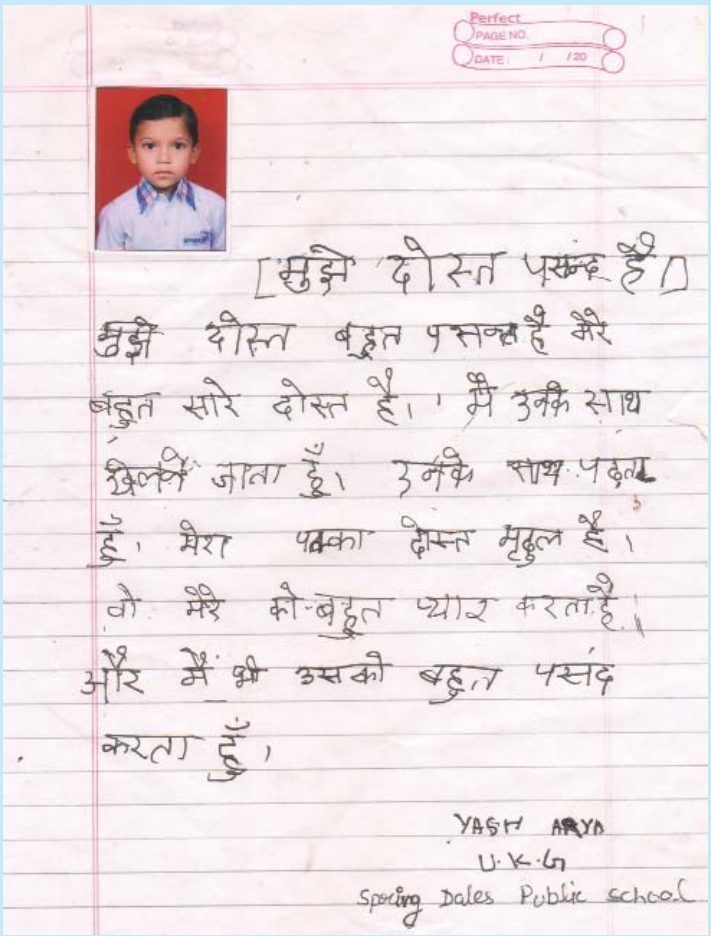

[मुझे दोस्त पसन्द हैं।]

मुझे दोस्त बहुत पसन्द हैं मेरे बहुत सारे दोस्त हैं। मैं उनके साथ खेलने जाता हूँ। उनके साथ पढ़ता हूँ। मेरा पक्का दोस्त मृदुल है। वो मेरे को बहुत प्यार करता है। और मैं भी उसको बहुत पसंद करता हूँ।

YASH ARYA
U.K.G
Spring Dales Public School

प्राथमिक शिक्षक पत्रिका के बारे में

साथियों,

प्राथमिक शिक्षक पत्रिका में प्रारंभिक शिक्षा से संबंधित विभिन्न पहलुओं पर आधारित ऐसे लेख प्रकाशित किए जाते है जो एक शिक्षक के लिए उपयोगी हों। इस पत्रिका के कुछ महत्वपूर्ण सरोकार हैं–

- शिक्षा संबंधी महत्वपूर्ण दस्तावेज़ों की जानकारी एवं विवेचन
- समसामयिक शैक्षिक शोध एवं अध्ययनों का विवरण
- समसामयिक शैक्षिक चिंतन
- शिक्षकों एवं शिक्षाविदों के अनुभव
- शिक्षकों एवं अभिभावकों के लिए व्यावहारिक बाल मनोविज्ञान
- शालाओं एवं शिक्षा केंद्रों की समीक्षा
- शिक्षा संबंधी खेल एवं उनकी उपयोगिता
- विभिन्न शिक्षण विधियाँ
- क्रियात्मक शोध और नवाचार
- शिक्षकों के लिए पठनीय पुस्तक के बारे में जानकारी आदि।

कैसे भेजें रचनाएँ

उपरोक्त सरोकारों पर आधारित लेख, संस्मरण, कविताएँ आदि आमंत्रित हैं। कृपया ध्यान रखें कि लेख सरल भाषा में तथा रोचक हों। शोधपरक लेखों के साथ संदर्भ साहित्य की सूची अवश्य दें। लेखों के प्रकाशन के उपरांत समुचित मानदेय की व्यवस्था है। लेखों की त्रुटिरहित टंकित प्रति अगर सी.डी. में भेज सकें तो अच्छा रहेगा। लेख ई-मेल द्वारा भी भेजे जा सकते हैं। अपने लेख निम्न पते पर भेजें–

अकादमिक संपादक

प्राथमिक शिक्षक

प्रारंभिक शिक्षा विभाग

एन.सी.ई.आर.टी.

श्री अरविंद मार्ग,

नयी दिल्ली -110016

ई. मेल- deencert @ yahoo.co.in

कैसे बनें सदस्य

इस पत्रिका के सुचारु रूप से प्रकाशन, प्रचार एवं प्रसार के लिए पाठकों तथा लेखकों का सहयोग अनिवार्य है। इस संदर्भ में आपसे निवेदन है कि इस पत्रिका के स्थायी सदस्य के रूप में अपने विद्यालय, संस्थान अथवा स्वयं को पंजीकृत करवाने का कष्ट करें। इसका वार्षिक सदस्यता शुल्क केवल ₹ 260 है और प्रति कॉपी का मूल्य मात्र ₹ 65 है। आशा है आप इस दिशा में शीघ्र ही निर्णय करके विद्यालय, संस्थान अथवा निजी वार्षिक सदस्यता के लिए कार्यवाही करेंगे। वार्षिक सदस्यता शुल्क-पत्र के लिए अपना पत्र स्वनामांकित लिफ़ाफ़े सहित **बिज़नेस मैनेजर, प्रकाशन प्रभाग (एन.सी.ई.आर.टी.) श्री अरविंद मार्ग, नयी दिल्ली-16** को भेज सकते हैं।